

# संस्कृति

अक्टूबर - नवम्बर  
1993

उत्तर प्रदेश

संस्कृति विभाग उ०प्र०  
उपहार स्वरूप भेंट



सांस्कृतिक कार्य विभाग, उत्तर प्रदेश का प्रकाशन

## लोक कला के विविध आयाम

- ◆ मिर्जापुर सोनभद्र 'लोक कला की समृद्धि थाती'
- ◆ कुमाऊँ की लोक कला और उसकी पृष्ठभूमि
- ◆ कुमाऊँ की लोक कला
- ◆ सांझी (एक लोक उत्सव – एक गीत पर्व)
- ◆ लोक चित्रण और उत्सव
- ◆ अल्पना

डा० अर्जुन दास केसरी	१
डा० यशोधर मठपाल	६
बालादत्त पाण्डेय	१२
डा० विमला वर्मा	१६
डा० बिमला वर्मा	२०
श्रीमती प्रभा पवार	२३

लोक कला संग्रहालय, लखनऊ द्वारा आयोजित व्याख्यान मालाओं के अन्तर्गत प्रस्तुत किए गए शोध-पत्रों का संकलन।



गोवर्धन पट्टा – कुमाऊँ क्षेत्र

संस्कृति विभाग उ० प्र०

उपहार स्वरूप भेंट

## मिर्जापुर सोनभद्र 'लोक कला की समृद्धि थाती'

डा० अर्जुन दास केसरी

सचिव

लोक वार्ता शोध संस्थान

राबर्ट्स गंज, सोनभद्र

लोक कला शब्द अत्यन्त व्यापक एवं बहुआयामी है यह दो शब्दों के योग से बना है लोक और कला। अमर कोशकार ने भारत वर्ष को लोक की संज्ञा दी है। वैसे भी लोक का अर्थ स्वर्णादि लोक तथा 'जन' इह लोक परलोक पृथ्वी, अन्तरीक्ष, द्युलोक, भू, भुव, संसार, प्रदेश, दिशा तथा प्राणी समाज आदि अनेक प्रकार से किया गया है।

**अर्थो जगती लोको विशिष्यं भुवनं जगत।**

**लोकोयं भारत वर्ष शरावस्यास्तुयो वधे।।**

**अमरकोश ६, पृ० सं० ४७**

लोक फोक का हिन्दी अनुवाद है जिसका सामान्य अर्थ लोग से भी किया जाता है। यह लोग जन का पर्याय है। इसके साथ ब्यवहत्र 'कला' शब्द उसे और व्यापक बना देता है वृहत हिन्दी कोश में कला के अनेक अर्थों में विशेष अर्थ है हुनर या गुण। कागशास्त्र के अनुसार चौसठ कलाओं में यथा गीत, नाट्य, वाद्य, नृत्य, आलेख्य, आदि कलाओं का उल्लेख किया गया है। किन्तु उन कलाओं में समस्त प्रकार की लोक कलाओं का उल्लेख नहीं किया गया है। वास्तव में कला आदि मानव से जुड़ी होने के साथ-साथ निरन्तर विकसन शील प्रक्रिया है परन्तु सभी प्रकार की लोक कलाओं को नामित करना अत्यन्त कठिन कार्य है। तथापि उनमें से कुछ प्रमुख लोक कलाओं का परिचय निम्नवत है—

**१. लोक गाथा**—मिर्जापुर, सोनभद्र जिले—काशी, प्रयाग, रोहतास, पलामु, सीधी और सरगुजा, तीन जनजातीय प्रदेशों के चार जनपदों के मध्य अवस्थित है जिसकी संस्कृति पर अभिजात्य, शहरी, मैदानी एवं पहाड़ी जनजातीय संस्कृतियों का प्रभाव है।

इन दोनों जनपदों में आल्हा, विजयमल, लोरिकी, या लोरिकायन, बिहुला, शोभानैका, बनजरवा, सोरठी, लचिया, कुसुमा देवी, भगवती देवी आदि भोजपुरी लोक कथाओं के अतिरिक्त जनजातियों में भी अनेक छोटी बड़ी लोक गाथाएं प्रचलित व लोक

प्रिय हैं। इस सम्बन्ध में मानसिंह, जोरावर सिंह, भगतसिंह, झूरी सिंह एवं वीर कुंवर सिंह की लोक गाथायें प्रचलित हैं।

उक्त लोक गाथाओं में आल्हा और लोरिकी लम्बी गाथायें हैं। आल्हा का संग्रह प्रमाणिकता के साथ अभी तक नहीं हुआ है। उसकी कुछ घटनाओं का संग्रह मैंने किया है जो नैनागढ़, चुनार की लड़ाई से जुड़ी है। यह लोक गाथा उ० प्र०, मध्य प्रदेश, बिहार के प्रायः सभी भागों में तथा अन्य प्रदेशों में भी जहाँ भोजपुरी हिन्दी समझी जाती है गायी जाती है।

दूसरी लोक महागाथा है 'लोरिकायन' जिसमें लोरिक मंजरी, चंदा, सहित जमुनी के साथ ब्याह—प्रेम की कथाओं का वर्णन है। इस गाथा के साथ लोरिक के पुत्रो अमेरिका, चनरइता, देवाइच की वीर—गाथाएं भी जुड़ी हुई हैं। मिर्जापुर, सोनभद्र लोरिक की जन्म और कर्म भूमि है। उक्त लोक गाथा गायकों की संख्या दिन प्रतिदिन घटती जा रही है अतः निकट भविष्य में इनका संग्रह सम्भव नहीं हुआ तो फिर असम्भव हो जायेगा।

**२. लोक कथा**—लोक कथा लोक साहित्य की महत्वपूर्ण विधा है परन्तु लोक कथाओं पर जो कुछ किया गया है वह नगण्य है। मिर्जापुर सोनभद्र में हजारों हजार लोक कथाएं कही सुनी जाती हैं और विभिन्न प्रकार की लोक कथाएं ग्रामीण अंचलों में बिखरी पड़ी हैं जिन्हें हम ग्रामीणों का पुराणेतिहास कह सकते हैं। इन लोक कथाओं के संग्रह, सम्पादन, प्रकाशन की जरूरत है जिसे स्वैच्छिक संस्थाओं के सहयोग से सरकारी संस्थाएं, अकादमियाँ बखूबी कर सकती हैं। लोक वार्ता शोध संस्थान की ओर वर्ष १९७६ में प्रकाशित प्रेरक बाल लोक कथाओं का प्रकाशन एवं आदर्श उच्चतर माध्यमिक विद्यालय राबर्ट्सगंज द्वारा प्रकाशित 'आधान' पत्रिका के अतिरिक्त कोई महत्वपूर्ण प्रकाशन नहीं हुआ है। जनजातीय लोक कथाओं के बड़े प्रमाणिक संग्रह की जरूरत है क्योंकि औद्योगीकरण के कारण परिवेश और वातावरण तेजी से बदल रहा है और यह सारा साहित्य प्रदूषित होता जा रहा है।

**3. लोक गीत** — लोक गीत का भण्डार विशाल है। यह दोनों जनपद लोक गीतों के मामले में काफी समृद्ध हैं इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि ३० प्र०—संगीत नाटक अकादमी की सहायता से २००० कजरी गीतों का संग्रह मेरे द्वारा अथक परिश्रम करके किया गया। कजरी मिर्जापुर सरनाम पुस्तक में मेरे द्वारा १५० गीतों का प्रकाशन कराया गया है। अभी हजारों कजरियों का संग्रह किया जा सकता है।

मिर्जापुर से ही क्या और जगहों से भी लावनी लोक गीत की परम्परा समाप्त प्राय है लेकिन लगभग एक दशक पूर्व मिर्जापुर के गायकों से सम्पर्क करके मैंने ६०० से अधिक लावनियों का संग्रह किया था। लावनियों के सम्बन्ध में अधिक साहित्य प्रकाशित कराने की आवश्यकता है।

अन्य संस्कार गीत बिरहा आदि का प्रभूत संग्रह भी किया जा सकता है। चार पांच सौ जनजातीय गीतों का संग्रह भी मेरे द्वारा किया गया जिनमें से १०० से अधिक गीतों का संग्रह करमा नाम से प्रकाशित किये गये हैं। मिर्जापुर, सोनभद्र से ही लोकगीतों का संग्रह किया जाय तो अनेक गीतों का संग्रह किया जा सकता है। इस प्रकार का कार्य बिहार राष्ट्र भाषा परिषद ने किया था।

**4. लोक नाट्य** — लोक नाट्य भी एक समृद्ध शक्तिशाली एवं सम्पन्न विधा है लेकिन इसकी ओर समुचित ध्यान नहीं दिया गया है विशेषकर मिर्जापुर, सोनभद्र के लोक नाट्यों पर कार्य नहीं के बराबर हुआ है। डा० कृष्णदेव, उपाध्याय ने लोक नाट्यों को सात भागों में विभाजित किया है यथा — भाष्य नाट्य, संवाद नाट्य, कथानक नाट्य, पात्र नाट्य, चरित्र चित्रण नाट्य, रूपक योजनाबद्ध नाट्य और अभिनय नाट्य के रूप में वर्गीकृत किया है। अकादमी के प्रयास से सन् १९८६ से ओबरा के मंच पर नौ प्रकार के जनजातीय नृत्य एक साथ प्रस्तुत किये गये थे। अब तक करमा, डोमकच नृत्य देश के शताधिक मंचों पर, दोनों "अपना उत्सवों" सहित प्रस्तुत किये गये हैं। अभी भी इन जनपदों में अनेकों लोक नाटकों का यथावत संग्रह किया जा सकता है।

**5. लोकोक्ति, लोक सुभाषित तथा अन्य** — निर्दिष्ट जनपदों की दैनिक जीवन की शिक्षाप्रद बातों को पशु, प्रकृति, पहाड़ पक्षी तथा अन्य प्रसंगों से जोड़ा गया है जो बहुमूल्य है। इस तरह लोक साहित्य की दृष्टि से यह क्षेत्र इतना समृद्ध है कि अब तक जितना कुछ हुआ वह पर्याप्त नहीं है। लोक कलाओं का लोप भी उतनी तेजी से हो रहा है कि समय रहते यदि इस दिशा में समुचित कार्यवाही नहीं की गयी तो सब कुछ

मिट जायेगा।

### चित्रकला:

चित्रकला की दुनिया बहुत बड़ी है। लोक—साहित्य का आविर्भाव तो तब से हुआ होगा, जब मनुष्य में कुछ जागरुकता, अनुभवशीलता, अभिव्यक्ति की शक्ति आयी होगी, लेकिन कला मानव की आदि सहचरी है।

### गुहाचित्र:

आरंभ में मानव जब गुफाओं में रहता था और वस्त्र—निर्माण कला का विकास भी नहीं हुआ था, तब भी वह अपने भावों—विचारों की अभिव्यक्ति चित्रकला के माध्यम से करता था। मिर्जापुर—सोनभद्र में सीताकुण्ड (विन्ध्याचल), गेरुवा तालाब, विढमफाल, चुनार की पहाड़ियों, सक्तेशगढ़ के पास सिद्धनाथ की दरी, अहरौरा के समीप, लिखनिया, महड़रिया, मल्दरिया, बुढ़ादाई, चुर्क के समीप चनाइन मान, पंचमुखी, विजयगढ़ दुर्ग, हिरना हिरनी, घोड़ भांगर, चिचली पनौरा, घंघरौल बंधा, ढोकवा महरानी, राजपुर के पास लेखनियां, कण्डाकोट, चूनादरी, घोरावल से आगे मुखादरी आदि लगभग एक सौ गुफाओं में ढाई हजार से भी अधिक चित्र गेरू, सफेद, पीले, काले, किंतु अधिकतर, गेरू रंग के ही बने हुए हैं जो प्रागैतिहासिक हैं और जिनका समय पांच हजार वर्ष पूर्व से पचीस हजार वर्ष पूर्व तक आंका गया है। इनमें से अधिकतर चित्र, आखेट, गोचारण—पराचारण, यात्रा, वार्तालाप, पूजा—आराधना, नृत्य—नाट्य, युद्ध कला, श्रृंगार—प्रसाधन, मधु—संचय, अश्वारोहण, हस्ति आरोहण, आलेखन, पक्षी उड़ाने तथा अन्य अनेक प्रांतों में जुड़े हैं। ये चित्र तत्कालीन जीवन शैली, कला, आचार संहिता, मनोरंजन धार्मिक सामाजिक समन्वय शीलता, सांस्कृतिक गतिविधियों का पक्का व प्रमाणिक इतिहास बताते हैं।

गुफा के इन चित्रों का अध्ययन एवं प्रकाशन हुआ है परन्तु फिर भी अनुसंधान की जरूरत है। क्योंकि पहाड़ियाँ तोड़ी जा रही हैं जनसंख्या दबाव तथा बनो के विनाश के कारण ये चित्र दिनष्ट होते जा रहे हैं इनकी सुरक्षा नहीं की गयी तो लोक कला की समृद्ध थाती निकट भविष्य में समाप्त हो सकती है।

**6. भित्ति चित्र** — जब ग्रह, निर्माण कला का विकास हुआ तो उसे सजाने के लिए विशिष्ट सामाजिक समारोहों पर अथवा धार्मिक पर्वों पर द्वार की भित्तियों और कोहड़र को चित्रांकित करने की परम्परा का श्रीगणेश हुआ। विभिन्न अवसरों पर गोबर, माटी, चावल या गेहूँ के आटे, रंगे हुए अनाजों से भिन्न भिन्न प्रकार के भित्ति चित्र बनाये जाते हैं। यह कार्य ज्यादातर गांव की बूढ़ी

महिलाएं करती हैं जिनकी संख्या दिन प्रतिदिन समाप्त होती जा रही है। जनजातीय क्षेत्रों में ये चित्र बहुतायत तथा इतने कलात्मक और कथात्मक होते हैं कि उन्हें समझना कठिन हो जाता है। प्रदेश की सरकार इस दिशा में सराहनीय कार्य कर रही है।

**9. गुदना या अंग आलेखन: मेहन्दी** — गुदना पारम्परिक लोक चित्रकला है। सावन के महीने में तीज, कजरी, (नागपंचमी) रक्षाबंधन आदि त्योहारों पर मेहदी रचने की परम्परा बहुत पुरानी है। स्त्रियां या बालिकाएं, हाथ की हथेलियाँ, पंजों, बांहों, पांवों आदि में मेहदी रचना शुभ और अनिवार्य समझती हैं। इनमें से कुछ बहुत दक्ष कलाकार होती हैं जो बहुत बारीक चित्र बनाती हैं। ये चित्र अधिकतर पशु, पक्षी, प्रकृति, देवी देवता, जीव-जन्तु सांप, बिच्छू तक बनाये जाते हैं।

यह परंपरा यहां जीवन से जुड़ गयी है। मिर्जापुर की कजरी सरनाम है, इसके कई समारोह विभिन्न स्थलों-अवसरों पर किये जाते हैं और मेलों-ठेलों का आयोजन किया जाता है जिसके कारण स्त्रियां, कंवारी कन्याएं मेहदी रचना अनिवार्य समझती हैं। जनजातियों में मेहदी रचाने की प्रथा कम है। गुदना उनके जीवन की अनिवार्यता है। इसके प्रति इनका यह अटूट विश्वास है कि संसार की हर वस्तु मरने के बाद यहीं रह जाती है, केवल गुदना ही जन्म जन्मान्तर साथ देता है। इसे ये अगले कई जन्मों में पति, माता-पिता, भाई को प्राप्त कराने का प्रतीक मानते हैं। इनकी गोदनाहारिन-ठोकहारिन जाति ही होती है जो गोदना की कला में निपुण होती है। वह खानावदोश जाति है जो गठरी में गोदने का सारा सामान लिए होती है और नाचने, गाने, हास्य-परिहास की कला में भी दक्ष होती है। मिर्जापुर की नंदिता शर्मा के पास गोदना और मेहदी का अच्छा संग्रह है। इसका कुछ रूप रजाई, गिलाफ, गलीचा बनाने वाले रंगसाजों या कलाकारों के यहां भी सुरक्षित है। जिसके माध्यम से यह लोककला विदेशों में भी लोकप्रिय हुई है।

### वाद्ययंत्रों की चित्रकारी :

मादल, तबला, ढोल, डफला, टइयां, मिशान, सारंगी आदि वाद्ययंत्रों पर चित्रकारी करने की भी परंपरा रही है। इन वाद्ययंत्रों पर स्वस्तिक चिह्न, पशु-पक्षियों, नर्तकों नर्तकियों आदि के चित्र बनाये जाते हैं। ये चित्र लाल गेरु रंग, या काला, पीला, हरा, नीला आदि रंगों से बनाये जाते हैं। इन्हें वाद्ययंत्र बनाने वाला कलाकार या उसकी सहायता करने वाली उसकी पत्नी बनाती है। इन चित्रों से वाद्ययंत्र रंगबिरंगे आकर्षक हो जाते हैं। सोनभद्र में बनने वाला

वाद्य मादल और डफ मशहूर है, मिर्जापुर-विन्ध्याचल की खजरी, चंग, डमरू मशहूर है। इन वाद्यों की चित्रकारी का संग्रह समग्र रूप में अभी तक किसी ने नहीं किया है।

### शिल्प :

हर शिल्प, कला या लोककला का दूसरा रूप है। मूर्तिकला, काष्ठ कला, प्रस्तर-कला तथा शस्त्रास्त्रों की कला को इसी कोटि में रखा जा सकता है। मिर्जापुर, सोनभद्र वास्तु और स्थापत्य कला की दृष्टि से भी बहुत धनी हैं। आरंभ से ही काशी और प्रयाग का एक हिस्सा होने के कारण यहां अनेक संस्कृतियों का उदय-अस्त हुआ है। तब भी मध्य कालीन-गधड़वालों, चन्देलों के समय में यहां घोरावल के पास शिवद्वार-शतद्वारी में शिल्प नगर होने के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। वहां से गोठानी तक के क्षेत्र को ग्यारहवीं बारहवीं शताब्दी में 'द्वितीय काशी' के नाम से जाना जाता था। इस विस्तृत क्षेत्र में बेलन, सोन के पार्श्ववर्ती क्षेत्रों में हजारों संख्या में प्रस्तर-कला-कृतियां बिखरी पड़ी हैं, शताधिक दुर्लभ कलाकृतियां चोरी चली गयीं, न जाने कितनी टूट-फूट गयीं। यहीं की मूर्तियों को यदि एकत्र कर लिया जाय तो एक अच्छा खासा संग्रहालय बन सकता है। मिर्जापुर-विन्ध्याचल में बिखरी पड़ी मूर्तियां हजारों की संख्या में गंगा की गोद के हवाले हो गयीं। इन मूर्तियों के सम्बन्ध में व्यापक सर्वेक्षण एवं प्रकाशन किये जाने की आवश्यकता है।



अगरिया जनजातीय नृत्य कला : सोनभद्र

## शास्त्रास्त्रों की कला :

शास्त्रास्त्रों की कला भी लोक-कला ही है क्योंकि इसका निर्माण लोक-कलाकारों द्वारा ही किया गया था पाषाण काल के जो औजार प्राप्त हुए हैं, वे अनगढ़ या ऊबड़-खाबड़ होते हुए कलात्मक हैं। मिर्जापुर-सोनभद्र में दांतों वाला स्कैपर मिला है जिसे तत्कालीन मानव फेंक कर जानवरों का शिकार करता था। डॉ० सांकलिया को बेलन घाटी से कुछ ऐसे औजार मिले थे जिनके आधार पर उन्होंने बेलन घाटी की संस्कृति को सवा लाख वर्ष पुरानी बताया था। संस्थान के संग्रहालय में कई आकार-प्रकार के प्रस्तुर-कुठारों, प्रस्तर-निर्मित बारीक औजारों, पलैक, ब्लेड, कोर आदि का संग्रह किया गया है। यहां की खोह-कन्दराओं, नदियों की तलहटियों, गुफाओं में ये औजार आज भी आसानी से प्राप्त हो जाते हैं। निःसन्देह इन्हें तत्कालीन शिल्पी ही बनाते रहे होंगे।

लौह युग में लोहे के बने नुकीले तीर त्रिकोणाकार दांतेदार तथा चिड़ियों का शिकार करने के लिए बांस या काठ के बने गोलाकार तीर बनने लगे जो आज तक बरकरार हैं। आदिवासियों द्वारा पहले ये और अन्य पात्र गगरा, लोहिया, करछुल, तवा, सिकरी, चिमरा, कुल्हाड़ी, फावड़ा आदि अंगरिया जनजाति द्वारा बनाये जाते थे। अंगरिया लोहे वाले पत्थर को, जो सोनभद्र की पहाड़ियों में बहुतायत से मिलता है, गलाकर स्वहस्त निर्मित भट्टी में पिघलाकर, लोहे को पक्का करके बनाते हैं। ये इन्हें साप्ताहिक बाजारों में सस्ते दाम पर बेचते और उसी से जीविका चलाते हैं। इनमें से कुछ का संग्रह भी संस्थान के संग्रहालय में किया गया है। दाना फँला कर चिड़िया फंसाने, गोटी गुलेला से चिड़ियों का शिकार करने के उपकरण भी संग्रहालय में देखे जा सकते हैं।

आदिवासियों की धनुर्ही का बड़ा कमाल है। वह माथे तक ऊंची बांस या काठ (लचीले) की बनी होती है जिसमें बांस की ही कमानी दोनों किनारों पर रस्सी में बंधी होती है। धनुर्ही को चढ़ाकर तीर से निशाना साधा जाता है जो प्रायः अचूक होता है। इससे कोल, खरवार, बैगर, गोंड़, घांगर, कोरवा आदि जनजातियां उड़ती हुई चिड़ियों, भागते हुए हारिणों, बारह सिंघों, दौड़ते सूअर-सांभरों तथा शेर तक का शिकार करते हैं। इसी प्रकार ताँत की गुलेली या गुलेला से भी वे शिकार करते हैं। अब वे जंगल का शिकार कर नहीं सकते, इसलिए तीर-कमान, गोरी-गुलेला उनके बीच से समाप्त हो रहा है।

## सींक की कला :

सींक एक प्रकार की घास है जो ऊपर झिल्लीदार लम्बी पतली

होती है। उसे एक-एक कर के चुना जाता है, उससे दैनिक उपयोग की बढ़नी (बाटोरनी कुरुई, सूपा, बेना, झपोली, झांपी, झंपा विविध रंगों में रंग कर बनाया जाता है। बढ़नी की कला सोनभद्र की विशिष्ट कला है जिसको गूथ कर बनाया जाता है। गांव के ज्यादातर लोग इस कला में दक्ष होते हैं। इसी से छोटे-बड़े आकार की झांपी, झपोली भी तैयार की जाती है जिसमें औरतें श्रृंगार उपकरण रखती हैं। बहुत दिनी होती है यह। सौ-दो सौ वर्ष तक या ज्यादा चल जाती है। कभी-कभी यह पांच-छह फीट तक ऊंची और उसी हिसाब से चौड़ी बनायी जाती है। सींक का बना पंखा बेटी की बिदाई में देने की प्रथा है।

## रस्सी बंटने की कला :

रस्सी बंटने की कला भी पुरानी है। सोनभद्र के दुद्धी तहसील में बगई एक प्रकार की घास होती है। इस घास को सुखाकर रख दिया जाता है और जब चाहते हैं उससे रस्सी बना सकते हैं। उसे लकड़ी की बनी गड़ारी पर बटते और रस्सी बनाते हैं। उसे हाथ की हथेली तथा उंगलियों की सहायता से बरते हैं। इस रस्सी से चारपाई बुनी जाती है, लेजुर-पानी निकालने की रस्सी, पशुओं को बांधने के लिए पगहा, घर छाने के लिए भी बनाते हैं। यहां की बनी बाधी बगई या रस्सी कई अन्य प्रदेशों में भी जाती है। इस कला को प्रोत्साहन देकर जनजातियों की रोटी की समस्या हल की जा सकती है। बगई के अलावा सनई, बकेल, पटुआ आदि की भी रस्सी बनायी जाती है। मोर पंख और पटुआ से गेंड़ा (बैलों को जोड़ने की रस्सी) बनाया जाता है।

## बांस की कला :

बांस गांव का एक उपयोगी पेड़ या झाड़ी है जिसे प्रत्येक गांव में देखा जा सकता है। इससे मकान तो बनता ही है, टटरा, टटरी, डलिया, सूपा, बेना, मौकी, दौरी, सीढ़ी, कुरुई, मछली मारने-रखने का पात्र, वाद्ययंत्र-शहनाई, वांसुरी, डफला आदि, तीर-कमान, पनडब्बा, कुर्सी-मेज आदि वस्तुएं बनायी जाती हैं। मिर्जापुर के पंखे और डंडे मशहूर हैं। लाठी, लोहबन्दा यहां बनता है जो काफी दूर तक जाता है।

बांस की कला के विशेषज्ञ घरकार-डोम होते हैं। ये इसी कला से अपनी जीविका चलाते हैं। यदि इन्हें प्रशिक्षण दिया जाय तो इस कला का काफी विकास हो सकता है। क्योंकि सोनभद्र-मिर्जापुर के जंगलों में बास अपने आप बहुतायत से पाया जाता है। बांस का बना छोटा कोल्हू, जिससे तेल निकालने की प्रथा आज भी यत्र-तत्र देखी जाती है। इसी प्रकार ककवा-कंधी भी आदिवासी स्वयं बना लेते हैं।

### लकड़ी की कला :

लकड़ी भी एक उपयोगी वस्तु है जिससे मकान, खिड़की—दरवाजे, मेज—कुर्सी, श्रृंगारदान, पलंग तो बनाये ही जाते हैं, कुछ कलात्मक वस्तुएं भी बनायी जाती हैं जैसे उबटन रखने के लिए माला। इसमें दो खानें होते हैं तथा ऊपरी भाग पर घोड़ा बना होता है। लकड़ी से—महुली या कटहल से ढोल, मादल बनाया जाता है। आम की लकड़ी से कठवत् अढ़िया बनाया जाता है जो भोजन करने, चावल धोने का पात्र है। पन्निका जनजाति के लोग चरखा बनाकर उससे सूती कपड़े बनाते थे। वे ज्ञाना—बाना की कला जानते थे।

सोनभद्र में एक विशेष प्रकार की लकड़ी तथा धवरा से कठपुतलियां बनायी जाती हैं। इसे पठारी जनजाति के लोग बखूबी करते हैं। ये इस कला में इतने दक्ष हाते हैं कि कम समय में सुन्दर आकृतियां बना लेते हैं। कठपुतली दिखा कर ये अपनी जीविका चलाते हैं। इस कला को विकसित करके नये मूल्यों के प्रचार—प्रसार की व्यवस्था की जा सकती है।

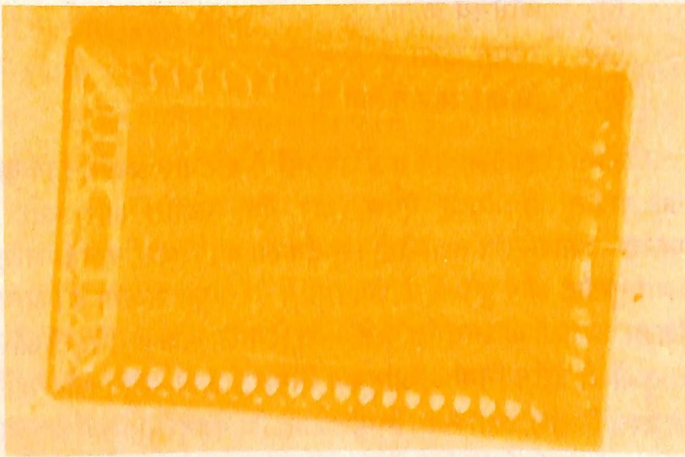
### मिट्टी का काम और उसकी कला :

मिट्टी की विविध वस्तुओं के बनाने की कला बहुत पुरानी है। हमने मोहन जोदड़ो कालीन कला की अनुकृति के पुराने टेराकोटा, चिकने लाल काले रंग के पात्रों, कुशाण काल से लेकर डेढ़—दो सौ वर्ष पूर्व तक के शताधिक ईंटों का संग्रह किया है। एक ईंट लम्बी—चौड़ी—मोटी तेरह किलोग्राम वजन की वहीं के रघुनाथ पुर बंधे के समीप बने एक पुराने मंदिर से मिली थी। यहीं विष्णु भगवान की लगभग चार फीट ऊंची मूर्ति भी मिली है। ये ईंटें वहां के मंदिरों और किलों से प्राप्त हुई हैं।

गंगा और सोन की घाटियों से अनेक मृत्रिका पात्र, पात्रों के टुकड़े, खिलौने, टेरा कोटा आदि प्राप्त हुए हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि मिट्टी की कलात्मक वस्तुओं को बनाने की कला यहां की बहुत पुरानी है। अहरौरा, विन्ध्याचल के बने लाल मिट्टी के पात्र—घड़े, सुराही, गमले, खिलौने, देवी देवताओं की मूर्तियां, हांडिया, पुरवा, परई आदि बहुत दूर तक जाते हैं।

इन पात्रों को रंगने की इनकी अपनी कला है जिसे पूरे परिवार के लोग मिलकर करते हैं। इन पात्रों पर पशु—पक्षियों, वनस्पतियों, देवी—देवताओं, तथा अन्य अनेक प्रकार के सुन्दर रंगीन चित्र बनाये जाते हैं जिन्हें बस देखते ही बनता है। इस कार्य को कुम्हार जाति के लोग अधिक करते हैं।

सोनभद्र की जनजातीय महिलाएं घास—फूस, पत्ता, पेड़ों की छाल से हाथों—पावों का कंगन, बेरवा, पहुंची, माला, अंगूठी, माथे की मथवंदी आदि बना लेती हैं। ताड़ के पत्ते से नकबुल्ली, नथ, कर्णफूल आदि बनाकर उसे स्थानीय बाजारों, मेलों—ठेलों में बेचकर अपनी जीविका चलाती हैं। इन सभी प्रकार की लोक—कलाओं के मूल रूप में संग्रह की आवश्यकता है। लोक कलाओं का संग्रहालय बनाने की जरूरत है। इस तरह का एक मात्र संग्रहालय पूरे प्रदेश में लोकवार्ता शोध संस्थान है जहां दुर्लभ वस्तुओं, कलाकृतियों, पाण्डुलिपियों, सिक्कों, वाद्य—यंत्रों, गुहाचित्रों, प्रतीकों, औजारों, आभूषणों, खनिजों पात्रों आदि का प्रभूत संग्रह विगत १६ वर्षों के अथक परिश्रम से किया गया है। जो रख—रखाव के अभाव में, साधनों की कमी के कारण अर्थ संकट के चलते नष्ट हो रहा है जबकि प्रत्येक जनपद में इस तरह का संग्रहालय बनाये जाने की जरूरत है। सरकारों को भी चाहिए कि ऐसी संस्थाओं को पर्याप्त आर्थिक सहायता प्रदान करे।



काष्ठ कला



लक्ष्मी गणेश — पक्की मिट्टी से निर्मित

## कुमाऊँ की लोक कला और उसकी पृष्ठभूमि

डा० यशोधर मठपाल

निदेशक, लोक संग्रह, भीमताल

कुमाऊँ एक क्षेत्रवाचक संज्ञा है जिसका तात्पर्य अल्मोड़ा, नैनीताल और पिथौरागढ़ जनपदों से है। उत्तर प्रदेश राज्य का हिमालयी भूभाग पौराणिक काल से उत्तराखण्ड नाम से जाना जाता रहा है। इसके दो प्रधान उपखण्ड माने जाते हैं – केदारखण्ड और मानस खण्ड। केदारखण्ड आज का गढ़वाल है और मानसखण्ड कुमाऊँ। आरम्भिक ऐतिहासिक, युग में यह क्षेत्र कूर्मचल कहलाता था।

कुमाऊँ सही अर्थों में अनेक संस्कृतियों तथा विश्वासों का संगम स्थल है क्योंकि अनादि काल से यहां लोग बाहर से आते रहे हैं। यहाँ के मूल निवासी संभवतः मंगोल प्रजातीय किरात थे, उनके बाद निषाद प्रजाति के लोग आए, फिर खस और शक नामधारी विदेशी मूल के लोग।

बाहरी आगंतुकों ने प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से कुमाऊँ की संस्कृति और कला को प्रभावित किया है। इसी सन् की आरम्भिक शताब्दियों में कुमाऊँ के राजाओं का संबंध बंगाल और उड़ीसा के शासकों से भी रहा है। जागेश्वर मंदिर में कई शिलालेख इस सत्य की पुष्टि करते हैं। सत्रहवीं शताब्दी में कुमाऊँ-गढ़वाल के नरेशों का सम्बन्ध महाराष्ट्रीय राजाओं से भी था। इस पर्वतीय क्षेत्र में वैदिक और पौराणिक हिन्दू धर्म के बाद, बौद्ध और जैन मतों का काफी प्रचार रहा। तंत्रवाद, लकुलीश शैवमत, लामावाद और नाथ संप्रदाय ने कुमाऊँ के लोकधर्म पर गहरी छाप छोड़ी। शकों ने यहाँ कोट पायजामा और बूट पहिने "उदीच्य वेषी" सूर्यपूजा का श्रीगणेश किया जबकि निषादों का लोकधर्म, जो आज भी हरिजन समाज में प्रचलित है, भूत-प्रेतों की पूजा-अर्चना के रूप में कुमाऊँनी समाज में मान्य है।

कुमाऊँ के ब्राह्मण, ठाकुर और वैश्य अपना मूल निवास बाहर मानते हैं। इन लोगों के कुछ रीति रिवाज आज भी अपनी विशिष्टता लिए हुए हैं। लोक कला और शिल्प की दृष्टि से यदि वर्गीकरण किया जाय तो हम पाते हैं कि खड़ी भित्ति पर चित्रकारी पुरोहितों

तथा ब्राह्मण नारियों में प्रधानतः सीमित है, जमीन पर आलेखन साह (वैश्य) महिलाओं के एकाधिकार में है और सारी शिल्पकला हरिजनों में व्याप्त है। क्षत्रिय वर्ग और उसमें भी प्राचीन खस-ठाकुरों में आलेखन की प्रथा नहीं है। आज ब्राह्मण महिलाएँ भी भित्ति चित्रों के अलावा जमीन में आलेखन करती हैं किन्तु उनका "विस्वार" (पिसे चावल से तैयार श्वेत रंग) साह महिलाओं के 'विस्वार' की भाँति पीली आभा वाला न होकर एकदम सफेद होता है। इसी प्रकार साह महिलाएँ अब भित्ति चित्रण भी करने लगी हैं और उच्च वर्णी क्षत्रिय भी विवाह आदि पर आलेखन करने लगे हैं।

मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि कुमाऊँ की लोककला शिल्प को पुरोहितों, महिलाओं और हरिजनों ने जीवित रखा है। इस समग्र कला शिल्प को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है :-

- (अ) चित्रकला
- (आ) मूर्तिकला
- (इ) अन्य शिल्प कलाएँ
- (ई) नृत्यकला
- (उ) अभिनय कला
- (ऊ) गायन कला
- (ए) विविध सांस्कृतिक कृत्य

लोक चित्रकला को कई उपवर्गों में बाँटकर अध्ययन किया जा सकता है। यथा ऐपण, बार बूँद, ज्योति और पट्टा, पातड़-दशौर-यंत्र तथा वेदी। मूर्तिकला को डिकर, समदी लाडू तथा मुखौटे और पुतलों के उपवर्गों में देखा जा सकता है। अन्य शिल्प कलाओं के अन्तर्गत पत्ते, बाँस रिंगाल, लकड़ी, मिट्टी और धातुओं से बर्तन निर्माण, आभूषण निर्माण, ऊनी-सूती और रेशों से वस्त्र निर्माण, तथा भवन निर्माण आते हैं। भवन निर्माण में लकड़ी के ऊपर उत्कीर्ण कार्य का अपना विशेष स्थान है। नृत्य में झोड़ा, चाँचरी, छपेली, छोलिया आदि लोकनृत्य, अभिनय कला में पहाड़ी



रामलीला तथा अन्य रतिनाटक और गायन में लोकगीतों से लेकर कुमाऊँनी होलीगीत, मंगलगीत और पर्वत उपत्यकाओं व निर्जन बनों में गूँजने वाले हृदयस्पर्शी प्रेमगीत आ जाते हैं। विविध सांस्कृतिक कृत्यों की झलक जन्म से लेकर मरणोपरान्त तक होने वाले रीतिरिवाजों और मेले उत्सवों में मिल जाती है।

कुमाऊँ की लोककला में भूमि आलेखन को 'ऐपण' कहा जाता है। ऐपण वहीं धार्मिक प्रतीकात्मक कला है जिसको बंगाल में अल्पना, उत्तर प्रदेश के मैदानी भागों में चौक पूरना, राजस्थान में म्हराना, गुजरात महाराष्ट्र में रंगोली और दक्षिण में कोलाम कहा जाता है। ऐपण शब्द का मूल अल्पना, आलेखन या अर्पण में ढूँढने का प्रयास किया गया है किन्तु मुझे इसका प्रथम प्रयोग महाकवि तुलसी की दोहावली में मिला। दोहावली का ४५४ दोहा है— "अपनो ऐपन निज हाथा, तिय पूजहिं निज भीति। फरई सकल मन कामना, तुलसी प्रीति प्रतीति"। यह दोहा न केवल ऐपण शब्द की प्राचीनता और हाथों के छाप की लोक परंपरा का ही उद्घोष करता है अपितु ऐपण की उपयोगिता को भी सिद्ध करता है।

ऐपण विविध धार्मिक एवं मांगलिक अवसरों पर महिलाओं द्वारा भूमि पर बनाये जाते हैं। गोबर-मिट्टी से पुती जमीन पर गेरु से तैयार लाल रंग को कपड़े के टुकड़े से लगाकर पृष्ठ भूमि बना ली जाती है। पूर्णतया सूखने से पूर्व ही, चावल को भिगोकर फिर सलवट्टे पर पीसकर तैयार सफेद रंग को जिसे 'विस्वार' कहा जाता है, नारियाँ अंगुलियों के पोरों से चित्रकारी करती हैं। चित्रकला ठीक केन्द्र से आरंभ की जाती है और चारों ओर को त्वरित गति से पूरी की जाती है, पृष्ठभूमि की नमी से श्वेतवर्णी रेखाकृतियाँ जलरंगों की तरलता तथा नमी लिए होती हैं। सूखने पर ऐपण काफी सुंदर लगते हैं। ऐपण घर के आंगन, मुख्य द्वार की दहलीज, सीढ़ियों, कर्मकाण्ड वाले कमरे की फर्श और पूजाघर में बनायी जाती है। ओखली के चारों ओर, और तुलसी चबूतरे पर भी इनका अंकन किया जाता है। ऐपण दर्जनों प्रकार के होते हैं किन्तु हर ऐपण के दो ही भाग होते हैं— संस्कार सम्बन्धी निश्चित केन्द्रीय आलेखन और बाह्य सज्जा। निश्चित आलेखन ऐपण की आत्मा होती है उसमें फेरबदल की गुंजाइश नहीं होती है, जबकि साज सज्जा का आकार प्रकार कमल, मछली, शंख, स्वास्तिक, त्रिशूल, पान जैसी मांगलिक वस्तुओं के प्रतीकों तथा नाना अलंकारिक बेलों से बढ़ाया जा सकता है। हर मांगलिक अवसर पर बनने वाली ऐपण का एक निश्चित स्वरूप रहता है जिसको उसमें बनने वाले सूक्ष्म प्रतीकों द्वारा समझा जा सकता है। भूमि पर नाना देव-देवियों के पदार्पण हेतु ऐपण लोक-जीवन के

कालीन-गलीचे हैं जिनको निर्धन से निर्धन परिवार भी प्रस्तुत कर संकता है। दैवी मेहमानों के स्वागत योग्य बनने वाले ऐपण चौकी कहलाते हैं। प्रमुख चौकियाँ हैं :-

१. **सरस्वती की चौकी** अक्षरज्ञान आरंभ करने हेतु बनाई जाती है। इस ऐपण में परम सत्ता को बिन्दु रूप में दर्शाते हैं। इसका स्थानीय नाम भी 'परम' है। इस बिन्दु को कई सम्केन्द्रित वृत्त घेरते हैं जो कि क्रमशः विकास के प्रतीक हैं। इन वृत्तों को आपस में गुंथे दो त्रिभुज घेरते हैं। त्रिभुजों से बनने वाला षटकोणी तारा सरस्वती का प्रतीक माना जाता है। सरस्वती के प्रतीक को पुनः आवेष्टित करता कई वृत्तों का एक वलय होता है जिसको तिकोने कोणों वाला आभामंडल सुशोभित करता है। चारों दिशाओं में पान के आकार के आपस में गुंथे त्रिभुज बनाए जाते हैं और चौकी को एक निश्चित आयताकार आकार देने हेतु बाहरी अलंकरण किया जाता है। यज्ञोपवीत संस्कार में भी सरस्वती पूजा हेतु ऐसी ही चौकी बनायी जाती है। इन चौकियों की बाह्य सज्जा में गनेली बेल का प्रयोग किया जाता है।

२. अश्विन की नवरात्रियों में दुर्गापूजा हेतु **दुर्गाजी की चौकियाँ** बनाई जाती हैं। इन चौकियों के केन्द्र में एक वर्ग की प्रत्येक भुजा पर नौ बिन्दु बराबर दूरी पर बनाए जाते हैं। उन्हीं के समानान्तर बीच में अन्य बिन्दु रखे जाते हैं जिनकी कुल संख्या ६१ हो जाती है, इन्हीं बिन्दुओं को विचित्र ढंग से मिलाने पर स्वस्तिक प्रतिमानों का एक जटिल आलेखन बन जाता है जिसे 'खोड़िया' पुकारा जाता है। प्रत्येक पंक्ति के नौ बिन्दु नौ दुर्गाओं के प्रतीक हैं, स्वस्तिक आलेखन को घेरने वाले संकेन्द्रित वर्गों पर चारों ओर को कलगी बनाई जाती है। चौकी को बाहर से सूर्यचन्द्र के प्रतीक घेरते हैं।

३. दीपावली पर लक्ष्मी पूजन हेतु बनने वाली चौकियों में मुख्य आकर्षण **देवी के पाँवों के चिह्न** हैं। इस चौकी में सर्वप्रथम षटकोणी तारे के रूप में सरस्वती का प्रतीक बनाया जाता है। यह प्रतीक ज्ञान के प्रकाश को इंगित करता है। प्रतीक के बाहर वृताकार अलंकरण किया जाता है तब २४ पंखुडीयुक्त कमल बनाया जाता है जो लक्ष्मी जी का आसन माना गया है। इसके बाहर लक्ष्मी जी के पदचिह्नों का घेरा होता है। लक्ष्मी के पाँव बनाने का तरीका बड़ा आसान है। ऐपण बनाने वाली महिला दोनों मुठठयों को एक साथ विश्वार के घोल में डुबाती है फिर उन्हें खड़े रूप में जमीन पर छाप देती है। अंगुली की नोक से पाँच-पाँच बिन्दु रख कर पाँव की अंगुलियाँ बना दी जाती हैं। दोनों पदचिह्नों

के बीच पुनः कमल का अंकन किया जाता है। ऐसे ही पद चिह्न चारों कोनों पर बनाए जाते हैं। चौकी की दायीं और बायीं भुजा को टुपुकी बेल से सजाया जाता है। एक अन्य चौकी में चारों दिशाओं से लक्ष्मी आती हुई दर्शायी जाती है। शेष अलंकरण स्वस्तिक, बेल, लता और टुपुकी आलेखनों से किया जाता है।

४. **महादेव जी की चौकी** मुख्यतः पार्थिव पूजन हेतु बनाई जाती है। इसके कई प्रकार हैं, जो पार्थिव पूजा वैशाख, श्रावण, कार्तिक और माघ के महीनों में पुत्र प्राप्ति हेतु की जाती है। शिव जी की चौकी प्रायः एक से एक क्रमशः बड़े होते सम्केन्द्रित वर्गों का संयोजन है, इसके मध्यम में अग्निपुराण और शिवपुराण में वर्णित सर्वतो भद्र मंडल होता है जो चौसठ बिन्दुओं को विचित्र ढंग से मिलाने से बनता है। सर्वतो भद्र के चारों कोने शिवपीठ के चार पायों का काम करते हैं। मध्य का वर्ग प्रधान लिंगम् का पीठ स्थान है। चारों पायों के मध्य एक घन आकार की गली बनती है जो शिव पीठ तक पहुंचने के चार द्वार हैं। मुख्य लिंगम् के चारों ओर १०८ या १००८ लघु लिंग पूजा हेतु मिट्टी गोबर या सुगंधित चावल के आटे से बनाए जाते हैं। चौकी का अलंकरण गनेली, लहरी व लगुली बेलों से किया जाता है।

५. **धुलि अर्घ्य की चौकी** विवाह के अवसर पर दूल्हे और पुरोहित के स्वागतार्थ आँगन में बनाई जाती है। इसका आकार काफी बड़ा होता है। यह चौकी मंगलकलश के आकार की होती है। ऐसा कलश जिसके दोनों ओर बढ़ती भुजाएँ हैं। मंगलकलश अमृत से पूर्ण है जो शाश्वत जीवन का प्रतीक है, तथा इसकी भुजाएँ वंशवृद्धि को दर्शाती हैं। इस अमृतकलश का मध्य भाग का अलंकरण चार अरणियों द्वारा सृजा जाता है, अरणियाँ वैदिक यज्ञाग्नि को प्रकट करने का साधन है, विवाह नव जीवनाग्नि को प्रज्वलित करने का शास्त्रीय मार्ग है। इन अरणियों द्वारा अष्टदल कमलों के एक के बाद दूसरे रूप साकार होते जाते हैं। बाहरी वलय काफी अलंकृत होता है। चौकी के शीर्ष को गगरी, भुजाओं को फाँगे और निचले भाग को आसन पुकारा जाता है। फाँगों की संख्या चार भी हो सकती है। अन्य सजावट स्वस्तिक, मछली और नाना प्रकार की बेलों से किया जाता है। चौकी के मध्य भाग में उषहार तथा पूजा की वस्तुएँ रखी जाती हैं। दूल्हा आसन पर खड़ा होता है और पुरोहित उसके दाँयी ओर। गोधूले बेला में प्रयुक्त होने के कारण इस चौकी को धुलि अर्घ्य की चौकी पुकारा जाता है।

६. व्रतबन्ध यज्ञोपवीत संस्कार का नाम है। इस अवसर

पर बनने वाली चौकी की पहिचान केन्द्र में अवस्थित सात तारों से हो जाती है। ये तारे सप्तर्षि है – कश्यप, अत्रि, भारद्वाज, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र और वशिष्ठ। सप्तर्षि के चारों ओर समुद्र की लहरों का सदा वर्धमान घेरा होता है। चारों कोनों पर चार 'तुरंगों' को जोड़ती बिन्दु लड़ी तथा उसके बाहर लहरी बेल अलंकरण हेतु प्रयुक्त होती है। तुरंग मुकुट के शीश पर विराजने वाला आभूषण है। इस चौकी के दो अन्य प्रकार भी देखने को मिलते हैं जिनमें मध्यवर्ती सप्तर्षि तो वहीं रहते हैं वाह्य अलंकरण अलग प्रकार का होता है।

७. **सूर्य की चौकी** नवजात शिशु को नामकरण संस्कार के बाद प्रथम बार सूर्यदर्शन के अवसर पर किया जाता है। इसके अलावा पौष माह में सूर्यपूजा हेतु भी यह चौकी निर्मित की जाती है। इसमें ऊपरी कोनों पर सूर्य, चन्द्र उनके मध्य सुक-सारंग तथा निचले भाग में अठजल, शंख, घंटा, चक्रासन दो अन्य आसन, धूपदान, दीपदान तथा गड़वा या टोंटीदार ताम्रपात्र बनाए जाते हैं। सुक-सारंगी शेषशायी विष्णु और लक्ष्मी के रूप हैं।

८. घर में भूमि में बनने वाले ऐपणों में अंतिम ऐपण देली लेखन है। घर के सभी दरवाजों तथा सीढ़ियों पर परंपरागत प्रतिमानों से चित्रकारी की जाती है। देहली में बनने वाले ऐपण एक छोटे कालीन अथवा पायदान के आकार के होते हैं, इनमें लगुलीबेल, जाई बेल, गनेली बेल, टुपुकी बेल, लहरिया बेल, पौधों की बालियाँ तथा लक्ष्मी जी के पदचिह्न बनाए जाते हैं। ऐसे खड़े ऐपण घर की सारी दीवारों के निचले भागों में भी कदाचित देखे जाते हैं।

इसी प्रकार के ऐपण तुलसी चबूतरे और ओखली के पात भी बनते हैं। गाँव के मंदिरों में भी विशेष अवसरों पर घरों की ही भाँति ऐपणों से सजावट की जाती है। घर से दूर जमीन पर बनने वाला एक ऐपण 'स्यो' है। इसका निर्माण चौराहे पर किया जाता है। पूजा की सामग्री को नदी नाले या श्रोत के पास विसर्जित कर जब नारियाँ घरों को लौटती हैं तो चौराहे पर स्यो की पूजा की जाती है, दक्षिणा अर्पित कर उसी को लाँघती सभी नारियाँ घरों में प्रवेश करती हैं। इसका उपयोग हर प्रकार के अनिष्ट निवारण से है। स्यो का आकार एक तिकोने वृक्ष की भाँति होता है जिसमें पाँच तल होते हैं। सबसे निचले तल में पाँच कमल पाँखुड़िया होती हैं। उसके ऊपर क्रमशः चार, तीन, दो और एक पाँखुड़िया बनायी जाती हैं। इनके अलावा दोनों ओर तथा शीर्ष

पर भी आभूषणनुमा अलंकरण किया जाता है। दीपावली के बाद एकादशी को घरों में सूप पर 'घुड़ियाँ' नाम की ऐपण बनायी जाती है। इसका आकार एक तीन जूड़े युक्त भयानक त्रिमुखी देवी, जो गले से पाँवों तक घाघरा पहिने है तथा अपने दोनों हाथ उठाए है सा लगता है, यह घर की दरिद्रता है। इसको भगाने हेतु घर के हर कमरे के ओने-कोने में सूप को पीटा जाता है। इस आलेखन में लक्ष्मी जी के पाँव चारों ओर से भीतर को आए दर्शाए जाते हैं।

बारात के कन्या घर आगमन पर दूल्हे और पुरोहित को खड़े होने हेतु लकड़ी की दो रंगीन चौकियाँ दी जाती हैं। इनकी हल्दी से पुती पीली पृष्ठभूमि में धुलि अर्ध की चौकी, स्वस्तिक और डाल में बैठी दो चिड़ियों के साथ अंकित होती हैं, ये कलात्मक चौकियाँ दहेज के साथ दूल्हे और पुरोहित को दी जाती हैं। हर घर में पूजा स्थल पर मिट्टी की एक वेदी होती है जो यज्ञोपवीत पर सामान्यतः बनायी जाती है। चौकोर आकार की इस बेदी में ऊपर पहुँचने के लिए चारों ओर से एक-एक सीढ़ी होती है। वेदी के ऊपर नव ग्रह पूजा हेतु ग्रहों का प्रतीकात्मक अंकन सूखे रंगों से किया जाता है। चारों ओर की चौड़ी किनारी के भीतर एक वृत्त बनाया जाता है। उसके अन्दर एक अष्ट दल कमल। कमल के मध्य का वृत्ताकार भाग भी काफी बड़ा होता है, यह मध्यवर्ती वृत्त सूर्य है जो पीठा के गहरे लाल चूर्ण से बनाया जाता है। कमल की उत्तरी पीली पंखुड़ी जो हल्दी के चूर्ण से पूरी की जाती है वृहस्पति का स्थान है, उत्तर पूर्व वर्ती गहरे पीले रंग की दूसरी पंखुड़ी बुध को दर्शाती है। पूर्व में स्थित तीसरा कमल दल शुक्र का प्रतीक है जो सफेद बनाया जाता है, आटे से संपूरित कर दक्षिण पूर्वी चन्द्र का दल भी श्वेत ही बनाया जाता है। दक्षिणी दल मंगल का पुनः लाल बनाया जाता है। दक्षिण-पश्चिमी छटा काला दल राहु का होता है जिसको भुने मास (उरद) के चूर्ण से पूरा जाता है। पश्चिमी श्याम दल शनि का माना जाता है, और अंतिम उत्तर पश्चिमी अष्टम दल केतु को दर्शाता है। इसका भष्मी वर्ण, मास के चूर्ण में आटा मिलाकर बनाया जाता है। अष्टदल कमल की सारी पृष्ठभूमि में भी सूखे रंग भरे जाते हैं। काष्ठ की चौकी पर पीली ही पृष्ठभूमि में लाल रंग से 'मातृका चौकी' नामक एक अन्य आलेखन भी बनाया जाता है।

**कुमाऊँनी लोक-चित्रकला** का दूसरा वर्ग दीवार के खड़े पट पर बनने वाले अलंकरणों का है। इनको दो उपवर्गों में बाँटा जा सकता है— आकृति प्रधान और आलेखन प्रधान। आकृति प्रधान चित्रों में देव-देवियों के पट्टे, और ज्योति का पट्टा है तथा

आलेखन प्रधान चित्रों में बारबूद नाता और मुहाली हैं। पट्टों में मुख्य जन्माष्टमी, महालक्ष्मी, नवदुर्गा, वट सावित्री, दूर्वाष्टमी, हरिशयनी तथा प्रबोधनी के पट्टे हैं। ये पट्टे मूलतः दीवार पर ही बनाए जाते थे। कुछ दशक पूर्व हस्तनिर्मित कागज पर बनने शुरू हुए और आज बाजार में सामान्य कागज पर छपे मिल जाते हैं। कई समानान्तर क्षैतिज संयोजनों से युक्त श्री कृष्ण जन्माष्टमी का पट्टा काफी रोचक और कलात्मक होता है। इसके चित्रण का प्रमुख विषय श्रीकृष्ण की बाललीलाएँ हैं। इसके अलावा विष्णु के आठ अवतार सीताराम, रूक्मणी, राधा कृष्ण, ब्रह्मा-ब्रह्मणी, गणेश, हनुमान, शिव जी, दुर्गा, गज लक्ष्मी, शुक सारंग, सरस्वती का प्रतीक तारा, सप्तर्षि, तीन मातृकाएँ, देवी का सिंह, नन्दी, नाग कन्याएँ, गंगा, कल्पतरु, कलश, भक्त प्रह्लाद, छट्टी पूजा की ज्योति, मुक्तामरण सप्तमी, दूर्वाष्टमी पर विरूढ़ धोने नौला जाती राजा की सात रानियाँ कमल और खोड़िया भी दिखाये जाते हैं। जन्माष्टमी के पट्टे में लाल, पीला, नीला और हरा रंग प्रयुक्त होता है।

**देवी पूजा हेतु बनने वाला थाप** या पट्टा देवी के विभिन्न अवतारों तथा पर्वत चोटियों पर रहने वाली स्थानीय देवियों को दर्शाता है। इस पट्टे के मध्य में अष्टभुजा देवी मय दो सिंहों के अंकित होती है, दाहिनी ओर कोट काँगड़ा माई और बायीं ओर ज्वाला देवी विराजमान होती हैं। इनके नीचे द्वारपाल होता है। फिर नवदुर्गा, पूण्यागिरि, दूनागिरि माताएँ, बारह कमल दलों के भीतर आपस में काटते दो त्रिभुजों और चार स्वस्तिकों से अंकित दुर्गायंत्र, नवचंडी, चौमुण्डा यंत्र, अन्यारी उज्याली बहिनें, राम-लक्ष्मण, सूर्य, चन्द्रमा, लक्ष्मी नारायण, ब्रह्मा, सरस्वती, भोलानाथ, अश्वयुक्त गोलानाथ, बाला, वर्मी, लमकुश, शुक सारंग, रिद्धि, गणेश और उनका वाहन चूहा अंकित किए जाते हैं। इसी प्रकार महालक्ष्मी के पट्टे में चार या आठ हाथियों से अभिषेकित लक्ष्मी का चित्रण किया जाता है। लक्ष्मी के नीचे खोड़िया, आसन, पदचिह्न तथा चारों ओर गनेली वेल व पदचिह्नों की कतार दर्शायी जाती है। हरिशयनी पट्टे में शेषशायी विष्णु, चरण दबाती लक्ष्मी, क्षीर सागर में कच्छप, मछली और विष्णु के नाभि कमल में ब्रह्मा का अंकन होता है। प्रबोधनी पर बालभद्र नामक आलेखन लाल रंग से आंका जाता है। दूर्वाष्टमी का पट्टा जन्माष्टमी पट्टे में भी प्रदर्शित किया जाता है और स्वतंत्र रूप से भी बनता है।

दूसरी आकृति प्रधान अल्पनाएँ ज्योतिपट्ट हैं। ज्योतिपट्ट मंगल कार्य सम्पन्न हो जाने पर देवताओं के प्रति आभार प्रदर्शित करने हेतु बनाए जाते हैं। इनका निर्माण पूजाघर की दीवाल पर 'च्यौंये'

पौधे की पत्तियों को घिसकर तैयार गहरे हरे रंग की आयताकार पृष्ठभूमि के ऊपर किया जाता है। यह एक बहुवर्गीय आलेखन है। मुख्य टिपाई चावल के विस्वार से करने के बाद घास के तिनकों या बाँस की बारीक सीकों पर रूई लपेटकर बनाई गयी तूलिकाओं से रंग भरे जाते हैं। सर्वमान्य आकृतियाँ सूर्य चन्द्र गणेश और तीन जीव मात्रिकाएँ हैं।

**वर्षा ऋतु आरंभ होने से पूर्व** गंगा दशहरे पर मकानों में वज्रपात निवारणार्थ दशयोर नामक आलेखन पंडित लोग अपने यजमानों को देते हैं। इसको मुख्य द्वार के ऊपर चिपकाया जाता है, दशयोर कागज पर कई वृत्तों से बना सदा वर्धमान कमलपुष्प है जिसमें लाल, गुलाबी, हरे, पीले और नीले रंग भरे होते हैं। गोलाकार आलेखन के मध्य में कभी गणेश या शिव भी बना दिए जाते हैं। बाहरी परिधि पर एक मंत्र लिखा होता है जिसका भावार्थ है कि अगस्त्य, पुलस्त्य, वैशम्पायन, जेमिनी तथा सुमंत ऋषि वज्र से रक्षा करते हैं।

**विवाह आदि के शुभ अवसर पर** मुख्य द्वार के ऊपर केकड़े के आकार के प्रतिमानों से हिंमाचल नामक आलेखन लिखा जाता है, इसे 'मुवाली' कहते हैं। द्वार के दोनों ओर दो सजे हाथी भी बनाए जाते हैं। पुरोहितों को अपनी चित्रकला प्रदर्शित करने का अवसर जन्म पत्र में मिलता है, जो लगभग २५ सेमी. चौड़ा और ११ मीटर से भी अधिक लम्बा हस्तनिर्मित कागज पर बनाया जाता है। समय के अनुसार यह लम्बाई घटकर चौथाई रह गयी है। जन्मपत्री जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त की दशा चक्र और घटनाएँ बतलाने वाला आलेख है जिसके सबसे आरंभ में विघ्नविनाशक गणेश तथा उसके नीचे आधे मीटर तक अलंकारिक आलेख बने होते हैं। दोनों किनारों पर बनी बेलें पूरी लम्बाई तक पहुँची होती हैं। जन्मपत्री के मध्य जिस व्यक्ति का वह लेखा जोखा है उसकी शबीह बना होता है, यह अपभ्रंश शैली की एक चश्मी चेहरे से युक्त मानवी आकृति है। इसको 'डिम्बू' पुकारते हैं।

**हिन्दू धर्म में पूजा हेतु तीन प्रकार की प्रतिमाएँ प्रयुक्त होती हैं।** ऋषियों द्वारा ज्ञान चक्षु से साक्षात् देखे देवरूपों के आधार पर बनी नाना तालमानों की मूर्तियाँ, इनको हर प्राचीन मंदिर में देखा जा सकता है। दूसरे प्रकार की प्रतिमाएँ प्रतीकात्मक होती हैं जो अवयवों रहित होती हैं, जैसे शिवलिंग या शालिग्राम, छोटे मंदिरों में ग्रामीणों द्वारा गोल पत्थर के रूप में पूजे जाने वाले सभी देव विग्रह इसी कोटि में आते हैं। तीसरी सूक्ष्म प्रतिमाएँ हैं नाना प्रकार के यंत्र जो केवल ज्यामितीय आकृतियों से बने होते हैं। कुमाऊँ में इस प्रकार के देव-देवी से सम्बन्धित कई यंत्र बनाए

और पूजे जाते हैं।

**मेष संक्रान्ति के दिन** रसोईघर की दीवाल पर श्वेत विस्वार से परस्पर जुड़ी अनाज की बालियों की कई कतारें बनाई जाती हैं जिनकी परिधि बिन्दुओं की रेखाओं से निर्मित होती हैं। यह अनाज से भरे भंडारघर का द्रश्य है। इस आलेखन को 'नाता' कहा जाता है जिसका अर्थ है आपसी सम्बन्ध। इसी से मिलता जुलता आलेखन -लक्ष्मी-नारायण' दीपावली पर रसोईघर में आंका जाता है। अंगुलियों की नोक से उद्भूत बिन्दुओं और लघु रेखाओं से खींचे गये आयताकार लक्ष्मीनारायण में दो कक्ष होते हैं। दांये कक्ष में लक्ष्मी विष्णु की दो प्रतीकात्मक आकृतियाँ एक ऊँचे आसन पर विराजमान होती हैं और बायें में त्रिदेव। ऊपर अनाज की बालियाँ प्रदर्शित की जाती हैं तथा चारों ओर बिन्दुदार रेखाओं से इसकी बाहरी सीमाएँ बाँधी जाती हैं।

पूजाघर की पूरी दीवाल के रंग बिरंगे अलंकरण को बार बूंद कहा जाता है। लाल, पीले, हरे और बैंगनी रंगों से बने ऐन्द्रजालिक आलेखन में कई प्रकार की भद्राओं का निर्माण निश्चित संख्या के बिन्दुओं और रेखाओं से किया जाता है। जैसे मोस्तीवार, गलीचावार, साँगलिया बार, गौरीतिलकवार, कटारी बार और अल्मोड़िया खोरास। इन बारों के रंग भी पूर्व निर्धारित होते हैं।



गोवर्धन पट्टा

कुमाऊँ में कर्क संक्रान्ति की पूर्व संध्या पर शिव परिवार की मृण्मयी मूर्तियाँ बनायी जाती हैं जिन्हें डिकारे कहा जाता है। यह दिन शिव पार्वती के विवाह जयन्ती का है। नौ दिन पूर्व पत्ते के दोने या टोकरी में मिट्टी भरकर पाँच या सात प्रकार के बीजों को बोते हैं। इसे अंधेरे में रखकर प्रातः सायं पानी से सींचा जाता है। नौवें दिन २०-२५ सेमी. लम्बे उगे पीले पौधों की दाड़िम की लकड़ी से निराई होती है। पीले पौधे के समूह को हरियाला कहते हैं। इन्हीं के पास फल फूलों के मध्य शिव, पार्वती, गणेश, कार्तिकेय, गुजरी आदि के रंगबिरंगे डिकारों की पूजा अर्चना की जाती है। डिकारे नारियों द्वारा नरम मिट्टी में रूई मिलाकर बनते हैं। उनको विस्वार के सफेद घोल से पोतकर नाना रंगों से रंगा जाता है दसवें दिन हरियाले के पौधों को काटकर पूजते हैं, भगवान को चढ़ाते हैं और दीर्घजीवन की आशीषों के साथ बच्चों के सिरों पर रखते हैं। मकान के दरवाजों पर भी पीले पौधों को गोबर से चिपकाया जाता है। सुहागिन रहने हेतु हरताली के दिन नारियाँ निर्जल व्रत रखकर मिट्टी से बने अर्द्धनारीश्वर की मूर्ति का पूजन करती हैं। अर्द्धनारीश्वर की अर्द्ध उत्कीर्ण मूर्ति भी काफी कलात्मक होती है। नन्दा अष्टमी पर नैनीताल, भुवाली, रानीखेत अल्मोड़ा तथा कोट की माई स्थानों पर नन्दा सुनन्दा की मूर्तियाँ केले के तनों बाँस, रंगबिरंगे कपड़ों और आभूषणों से बनाई जाती हैं। इन मूर्तियों में दो बड़े गोल चेहरों पर बड़ी बड़ी आँखे बनी होती हैं। नीचे का हिस्सा मात्र प्रतीकात्मक होता है। डेढ़ मीटर तक ऊँची इन मूर्तियों को मेले में डोला बनाकर घुमाया और पूजा जाता है।

पिथौरागढ़ में वर्षा ऋतु में 'हिल-जात्रा' नामक महोत्सव होता है। इस महोत्सव का मुख्य आकर्षण दो बैलों को हाँकता एक कृषक है। कृषक और बैल बने दोनों लोग रंगीन और कलात्मक मुखौटे लगाए होते हैं। उनके शरीर पर खड़िया मिट्टी से श्वेत निशान भी आँके जाते हैं। घंटी बजाते बैल किसान द्वारा हाँकने पर जब चलते हैं सारा जन समुदाय प्रमुदित हो उठता है।

कुमाऊँ की लोक कला का सर्वेक्षण तब तक अधूरा ही माना जाएगा जब तक उसमें **रामलीला हेतु बनने वाले विशाल पुतलों** को सम्मिलित न कर लिया जाय। ये पुतले अल्मोड़ा की रामलीला के प्राण हैं। तिमंजिले मकानों से भी ऊँचे पुतले पुवाल, टाट, और कपड़े से लोहे के ढाँचे के ऊपर बनाए जाते हैं। इनको वस्त्राभूषणों से पूरी तरह सजीव बना दिया जाता है। इन पुतलों में दशशीश रावण, कुंभकरण और मेघनाथ के पुतले मुख्य हैं। दशहरे के दिन इन्हें अन्यत्र की भाँति जलाया जाता है। यहाँ यह कहना आवश्यक होगा कि ये पुतले भारत के अन्य स्थानों में बनने वाले पुतलों से कहीं अधिक सजीव होते हैं। जलाने से पूर्व इन्हें पहिएदार गाड़ियों में नगर में घुमाया जाता है। अल्मोड़ा में पीढ़ियों से रहने वाले मुसलमान भाइयों की आमदनी का यह एक प्रमुख साधन है क्योंकि सारे के सारे पुतले उन्हीं के द्वारा बनाए जाते हैं। साम्प्रदायिक एकता और परस्पर सौहार्द का इससे अच्छा उदाहरण अन्यत्र मिलना भी दुर्लभ है।



जन्माष्टमी का पट्टा

## कुमाऊँ की लोक कला

बालादत्त पाण्डेय

इलाहाबाद

कुमाऊँ मण्डल उत्तर प्रदेश के उत्तरांचल में स्थित है। इसमें पिथौरागढ़, अल्मोड़ा तथा नैनीताल जिले सम्मिलित हैं। इसके उत्तर में हिमालय की हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियाँ हैं जिनमें त्रिशूल, नन्दादेवी, पंचकूली, कामेर आदि शिखर तथा पिण्डारी और मिलम ग्लेशियर प्रसिद्ध हैं। यहां की मुख्य घाटियाँ स्वाभाविक रूप से सांस्कृतिक केन्द्र बन गई हैं। दक्षिणी तराई का भाग मैदानी क्षेत्र है।

कला धर्म के गूढ़ अर्थों को समझने तथा व्यक्त करने का प्रमुख माध्यम है। कुमाऊँ की लोक कलात्मक अभिव्यक्ति तीन माध्यमों से होती है :

- (१) त्रिआयामिक रूप
- (२) प्रतीकात्मक रूप
- (३) सूक्ष्म रूप

कुमाऊँ की लोक कला में ये तीनों रूप स्पष्ट रूप से विद्यमान हैं।

(१) **त्रिआयामिक रूप** — मिट्टी से बनी देवी देवताओं की मूर्तियाँ “डिकारे” बांस, केले के खम्भों तथा कपड़े से बनी नन्दा की प्रतिमाएँ, विभिन्न स्थानीय तथा अन्य देवी देवताओं की ताँबे तथा लकड़ी में उभरी (Relief) प्रतिमाएँ।

(२) **प्रतीकात्मक रूप** — छपौली का रॉखा, चीर, लिंग—योनि आदि

(३) **सूक्ष्म रूप** — ज्यामितीय आकारों पर आधारित प्रतीक बिन्दु आदि।

### अभिव्यक्ति के साधन

कुमाऊँ की लोक कला की अभिव्यक्ति में जिन साधनों की आवश्यकता होती है आसानी से प्राप्त हो जाती, वे हैं मिट्टी, गोबर, साधारण कपड़ा रंगने के जल रंग, मिट्टी के रंग, कागज,

खपाचियाँ, साधारण कपड़ा आदि। इसके प्रशिक्षण के लिये भी कोई विशेष व्यवस्था करने की आवश्यकता नहीं होती, माता अपनी पुत्री को यह शिक्षा विभिन्न धार्मिक अवसरों पर भूमि पर ‘ऐपण’ बनाकर स्वतः ही दे देती हैं। ‘ऐपण’ बनाने के लिये पहले जमीन या दीवार को गोबर और मिट्टी से लीप कर समतल कर लिया जाता है फिर उसके ऊपर गेरू का लेप लगा दिया जाता है कुछ गीला रहने पर ‘विस्वार’ (चावल पीस कर सफेद घोल) से इच्छित ‘ऐपण’ बना लिये जाते हैं। कुछ विशिष्ट कृतियों के लिये आटा, मिट्टी के सूखे रंग, वनस्पतियों से तैयार किये रंगों का प्रयोग किया जाता है। ‘ऐपण’ के कार्य में अंगुलियों का प्रयोग चयों के रूप में होता है लेकिन कुछ अन्य कृतियों में तीली में रुई लपेट कर अथवा ब्रश द्वारा भी रंगों का प्रयोग किया जाता है। वनस्पति या खनिज रंगों का प्रयोग भी किया जाता है। जैसे — पत्तियों से हरा, हल्दी से पीला, रोली से लाल, रामरज, तथा उरद की दाल जलाकर काला आदि। इन्हें गोंद के पानी में मिला कर प्रयोग किया जाता है।

त्रिआयामिक आकृतियों के लिये मिट्टी तथा गोबर का प्रयोग होता है :-

१. **प्रतीकात्मक रूप** — ये मिट्टी, पत्थर या गोबर से बनाकर पिण्ड रूप में स्थापित कर ली जाती है।

२. **मृण्य मूर्तियाँ** — इनका निर्माण मिट्टी में रुई मिला कर किया जाता है। और मिट्टी की बत्तियाँ बना कर मूर्तियाँ बनाई जाती हैं इनके सूखने पर इनमें ‘कमेट’ के घोल में गोंद मिला कर लेप कर लिया जाता है सूखने पर रंगों द्वारा पूर्ण किया जाता है।

३. **पुतले** — नन्दा देवी की मूर्ति कपड़ा बांस की खपाची, केले के खम्भे तथा रंगों द्वारा बनाई जाती है तथा दशहरे के अवसर पर रावण आदि के पुतले भी बांस, कागज तथा रंगों के प्रयोग से बनाए जाते हैं।

अन्य माध्यम — बांस पर रंगीन कपड़े की पट्टियाँ बांध कर 'चीर' तथा बांस पर लकड़ी के छोटे छोटे टुकड़े लगा कर 'घपौली का रांखा' का निर्माण किया जाता है।

वर्गीकरण — माध्यम एवं तकनीक के आधार पर कुमाऊँ की लोक कला का निम्नलिखित वर्गीकरण किया जा सकता है :

- (१) 'ऐपण'
- (२) ज्योति-पट्टा
- (३) बर-बूद
- (४) तंत्र, मंत्र, चक्र, द्वार पथ, जन्म कुन्डली
- (५) प्रतीकात्मक रूप — निशाण, चीर, आकाश, दीप आदि
- (६) मृण्य मूर्तियाँ 'डिकारे'
- (७) वेदी नवग्रह, चौके, हवन कुण्ड
- (८) रंग वाली पिछौड़े
- (९) मेहेन्दी रचना

**'ऐपण'** — कुमाऊँनी भाषा में अल्पना को 'ऐपण' कहा जाता है। विभिन्न क्षेत्रों में इसके विविध नाम हैं जैसे बंगाल में अल्पना, महाराष्ट्र में रंगोली, गुजरात में सथिया या कलोरी, राजस्थान में मांडना, बिहार में अहपन, तथा उत्तर प्रदेश में चौक पूरना और सोन रखना आदि। कुमाऊँ में 'ऐपण' देहरी, आंगन, पूजा स्थल, दीवाल, चक्की के चारों ओर, ऊखल, सूप तथा आकाश दीप पर दिये जाते हैं। साधारणतया ऐपण के दो भाग होते हैं :

- (अ) केन्द्रीय भाग
- (ब) सजावट के लिये केन्द्रीय भाग के चारों ओर के बेल-बूटे तथा शुभ चिह्न।

केन्द्रीय भाग में विशिष्ट अवसर के लिये एक निर्धारित आकृति युक्त आलेखन बनाया जाता है, जो शुद्ध तथा आकर्षक बनाया जाता है, तत्पश्चात् इसे चारों ओर से समुचित शुभ चिन्हों युक्त बेल बूटों से सजाया जाता है। ऐपण दो प्रकार के होते हैं :

- (१) सजावट के 'ऐपण'।
- (२) विशिष्ट संस्कारों के 'ऐपण'।

**१. सजावट के 'ऐपण'** — ये स्थान विशेष को सजाने के लिये बनाए जाते हैं। इनमें कलाकार कुछ पारम्परिक 'मोतिफों' को लेकर स्वतंत्र रूप से कलात्मक आलेखनों की रचना करता है। इनमें पारम्परिक शुभ चिन्हों का होना आवश्यक होता है। जैसे कमल, पान-पत्ती, मछली, शंख, स्वास्तिक, नव-पल्लव, शुक-सारंग आदि।

**२. विशिष्ट अवसरों के 'ऐपण'** — कुमाऊँ की लोक कला में यह विशेषता दिखाई देती है कि यहां विभिन्न देवी देवताओं के लिये एक विशेष 'पीठ' (आसन) के 'ऐपण' का अंकन किया जाता है। तथा विभिन्न संस्कारों तथा पर्वों के लिये निर्धारित आकृतियों वाले 'ऐपण' बनाए जाते हैं। इन्हें बनाते समय कलाकार मूल आकार को परिवर्तित नहीं कर सकते, परन्तु उसे उभारने तथा भव्य बनाने के लिये अपनी कल्पना शक्ति का प्रयोग कर सकते हैं।

**ऐपणों के कुछ नमूने :**

**१. हिमांचल बेल** — यह बेल घर की बाहरी दीवार पर मुख्य द्वार के दोनों ओर बनाई जाती है। पहले पार्श्व भूमि को लाल रंग या गेरू से लीप लिया जाता है तत्पश्चात् उसके ऊपर 'विस्वार' से बनाया जाता है। घर की भीतरी दीवारों पर रंगों द्वारा भी बनाया जाता है। हिमांचल का अर्थ है हिमालय, इस ऐपण से हिमालय की पवित्रता एवं विशालता को घर में उतारने की भावना स्पष्ट होती है। इस मोतिफ में हिमशिखरों के अलंकारिक रूप की अभिव्यक्ति प्रतीत होती है।

**२. देहरी 'ऐपण'** — ये 'ऐपण' दरवाजों की देहरी पर खड़े और पड़े तल पर बनाए जाते हैं। खड़े तल पर विस्वार की धार डाल कर रेखाओं के विविध अनुक्रमण द्वारा आकर्षक रूप से सजा देते हैं। पड़े समतल धरातल पर एक, दो या अनेक मोतिफों की श्रंखला द्वारा सजाया जाता है।

इस 'ऐपण' में विभिन्न किनारों के 'ऐपण' बनाए गए हैं। ऊपर से पहले बार्डर में बने हुए मोतिफ को गुलाब, दूसरे को 'गगरी', तीसरे को 'कोठा', चौथे को 'घिरोली' या 'मोतीचूर' और पांचवे किनारे को 'टुपुकिया' (बिन्दु) कहते हैं। इनके अतिरिक्त अनेकों प्रकार के 'ऐपण' विभिन्न मोतिफों को लेकर रूपायित होते हैं।

**पूजा स्थल में 'ऐपण' :**

'पीठ' या 'चौकी' का तात्पर्य है आसन अर्थात् वह स्थान जहां पर कोई विशिष्ट देवी या देवता आवाहन के फलस्वरूप अवतरित होकर विराजते हैं। ये 'पीठ' यंत्र की भांति होते हैं और ज्यामितीय आलेखन से दीखते हैं। इन पीठों के आलेखन निश्चित होते हैं। वाह्य सजावट में रचनात्मकता दृष्टिगोचर होती है।

**१. महादेव पीठ** — यह 'ऐपण' भगवान शंकर के आवाहन हेतु बनाया जाता है। इसका निरूपण मान चित्र सा होता है जिसमें चारों दिशाओं से वेदी के मध्य भाग की ओर आते हुए मार्ग हैं

जो सीड़ियों से होते हुए जाते हैं। मध्य भाग में शिव लिंग का निरूपण किया गया है। इसे सजाने के लिये चारों ओर से बेल बूटे बनाए गए हैं।

**२. महालक्ष्मी की चौकी** — यह 'चौकी' वैभव और सम्पदा की देवी महालक्ष्मी के आवाहन हेतु बनाई जाती है। इसके मध्य भाग में दो सम त्रिबाहु त्रिभुज गुथे हुए दिखाए गये हैं जो छः कोने वाले तारे के रूप में दृश्य होता है। इसके मध्य में एक बिन्दु है जो अनन्तता का प्रतीक है। इसके बाहर चारों ओर कमल पत्रों का अंकन किया गया है वृत्त के अन्तिम घेरे में लक्ष्मी जी के चरणों का अंकन है जो केन्द्र स्थल की ओर अग्रसर हैं। इस केन्द्रीय 'ऐपण' को चारों ओर से सजाया गया है।

**३. सरस्वती चौकी** — यह चौकी ज्ञान की देवी सरस्वती के आवाहन हेतु बनाई जाती है। इसके मध्य भाग में बिन्दु अनन्तता का प्रतीक है। पंच कोणीय या षट कोणीय तारे का आलेखन बनाया गया है जो सरस्वती का प्रतीक है। इसे चारों ओर से सजाया गया है।

**४. दुर्गा चौकी** — इस चौकी के मध्य में  $६ \times ६ = ८१$  (खड़े और पड़े) बिन्दुओं से निर्मित 'खोड़िया' नामक 'ऐपण' बनाया गया है। ये नौ बिन्दु नव दुर्गा के प्रतीक हैं। इसके चारों ओर आठ कमल पत्रों का अंकन किया गया है।

**५. जनेऊ** — यह 'ऐपण' जनेऊ (यज्ञोपवीत) संस्कार के अवसर पर जमीन अथवा चौकी पर बनाया जाता है। इस चौकी पर बैठकर बटुक संस्थारित होता है। इस 'ऐपण' के मध्य में सात तारे सप्तऋषियों के प्रतीक हैं। इसके चारों ओर फूल-पत्ती तथा कौड़ी के मोतिफ से सजाया जाता है। इसी प्रकार का एक आलेखन बटुक के कोट की पीठ पर रोली से बनाया जाता है।

**६. धुलि अर्ध-चौकी** — यह 'ऐपण' आंगन में  $८" \times ८"$  के आकार में तक बनाया जाता है। गोधूली के समय दूल्हा का स्वागत यही पर होता है इस 'ऐपण' के चार मुख्य भाग होते हैं मध्य का भाग 'आरणी' (यज्ञ की लकड़ियाँ) है इसके ऊपर पूजा सामग्री तथा दूल्हा के दिये जाने वाले उपहार रखे जाते हैं ऊपरी भाग 'गगरी' है जो पानी से भरा हुआ कलश है। दोनों ओर फाँगे (शाखाएँ) हैं तथा नीचे का भाग 'आसन' है जहाँ पर दूल्हा तथा उसके दाहिनी ओर पुरोहित खड़ा होता है।

**७. नट-बन्धन** — यह 'ऐपण' नट-बन्धन कहा जाता है।

इसे रसोई की दीवाल पर एक बड़े सुन्दर म्यूरल के रूप में विविधता से बनाया जाता है। इसे बसन्त ऋतु (अप्रैल) के आगमन (मेष संक्रान्ति) पर बनाते हैं। इसका मुख्य मोतिफ अनाज की कोपलें हैं जो बहुलता का प्रतीक हैं। इस 'ऐपण' को रसोई घर में बनाने से घर में सब लोग मिल जुल कर रहते हैं ऐसी मान्यता है।

**८. लक्ष्मी-नारायण** — इस 'ऐपण' को दीपावली के अवसर पर रसोई की दीवाल पर बनाया जाता है। इसके बायीं ओर त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) बनाए जाते हैं तथा दायीं ओर लक्ष्मी-नारायण।

**९. घुइयाँ** — यह 'ऐपण' फर्श तथा सूप के उल्टे तल पर बनाया जाता है। यह अलक्ष्मी का प्रतीक है। दीपावली में महालक्ष्मी पूजा के बाद हरिबोधिनी एकादशी की प्रातः मुँह अँधेरे ही परिवार की बड़ी महिला एक गन्ने की डंडी से सूप को पीटते हुए अलक्ष्मी को घर के कोने कोने से बाहर निकालती है। फिर ऊखल के पास जा कर ऊखल में 'दाड़िम' और अखरोट को उल्टे मूसल से कूटा जाता है जो दुर्भाग्य को नष्ट करने का सूचक है। इसी अवसर पर ऊखल, चक्की, झाड़ू आदि उपकरणों पर भी 'ऐपण' बनाकर उन्हें सजाते हैं। इस 'ऐपण' के चारों ओर लक्ष्मी जी के चरण भी बने हैं जो लक्ष्मीजी के अन्दर आने के प्रतीक हैं।



कुमाऊँ क्षेत्र की अल्पना



**‘ज्योति’** – यह एक द्विआयामिक चित्र होता है जो कागज, दीवार अथवा लकड़ी के पीढे पर बनाया जाता है। इसका प्रयोग जीव-मात्रिकाओं की पूजा करने हेतु होता है ‘ज्योति’ का पूजन जन्मोत्सव, व्रतवन्ध, तथा विवाह आदि शुभ संस्कारों पर किया जाता है। ‘ज्योति’ का पूजन संस्कार के अंतिम सोपान पर किया जाता है।

**१. छट्टी तथा नामकरण संस्कार की ‘ज्योती’** – इस ‘ज्योती’ के मध्य भाग में तीन जीव मात्रिकाएँ बनाई जाती हैं। महा काली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वती, महाशक्तियाँ कमलासन पर स्थित हैं इनके दाहिने भाग में गणेश जी बनाए जाते हैं जो मूषक पर आसीन हैं। इनके नीचे सोड़स मात्रिकाएँ उर्ध्वमुखी त्रिकोणों के रूप में अंकित की जाती हैं। ऊपर दाहिने और बाएँ कोनों पर सूर्य तथा चन्द्र अंकित किये जाते हैं। तत्पश्चात् इस केन्द्रीय चित्र को चारों ओर से विविध पारम्परिक मोतिफों के आलेखनों से सजाया जाता है।

**२. विवाह की ज्योती** – विवाह की ज्योती में केन्द्रीय चित्र पूर्व की भांति होता है। इसकी मुख्य विशेषता ज्योती के ऊपर से तीसरा चौड़ा किनारा है। इसमें दोनों ओर किनारों पर पारम्परिक शैली में अष्टदल कमल बनाया जाता है।

इसके बाद दो ‘हरियाले बोट’ (कल्पवृक्ष) बनाए जाते हैं तथा मध्य में राधा-कृष्ण का चित्रांकन होता है तथा इस किनारे में यथा स्थान शुक-सारंग, फूल-पत्ती तथा स्वारस्तिक आदि चिन्हों से बनाकर सुशोभित करते हैं।

**३. व्रत बन्ध की ज्योती** – इसमें भी केन्द्रीय चित्र (जीव मात्रिकाएँ) पूर्व की भांति ही बनाए जाते हैं, ऊपर से तीसरे मुख्य किनारे के मध्य में हरियाला बोट (कल्पवृक्ष) बनाते हैं तथा इसके दोनों ओर शाखाओं के मध्य बायीं ओर सप्तऋषि के सात तारे तथा दायीं ओर छापरी (डलिया) का मोतिफ बनाया जाता है।

**पट्टा** – यह पारम्परिक शैली में बनाया गया चित्र है, जिसे दीवार या कागज पर बनाया जाता है। इस चित्र में उस देवी-देवता की जीवन लीला तथा उसके कार्यों का चित्रण किया जाता है।

जैसे – कृष्ण जन्माष्टमी का पट्टा, वट-सावित्री का पट्टा, हरिसयनी का पट्टा, हरि बोधिनी का पट्टा, गोवर्धन पूजा का पट्टा, महालक्ष्मी का पट्टा, दुर्गा का पट्टा, गंगा दशहरे का पट्टा आदि।

**महालक्ष्मी का पट्टा** – यह दीपावली के अवसर पर पूजा हेतु बनाया जाता है। इसमें महालक्ष्मी के चार हाथों में पद्म, चक्र, त्रिशूल तथा शंख दिखाए गए हैं। तथा भद्र लिखित आसन पर विराजमान हैं। इसके दोनों ओर नीचे जल कुण्ड बने हैं जिनमें से हाथी जल लेकर महालक्ष्मी को अर्पित कर रहे हैं।

**बर-बूंद** – वर-बूंद का अर्थ है रेखा और बिन्दु। बिन्दु और रेखा को विविध अन्तराल पर फैलाए जाने पर अनेकों प्रकार के भद्रों (चतुर्मुखी आलेखन) की रचना होती है। ये ज्यामितीय आलेखनों की भांति दिखाई पड़ते हैं। इनमें आकर्षक रंग भी भरे जाते हैं। ये भद्र उस कमरे की दीवारों पर बनाए जाते हैं जहाँ पर विशेष संस्कार सम्पन्न होता है। इन्हें कई महिलाएं मिल कर बनाती हैं यह अत्यन्त ही कठिन कार्य है और पूरे ध्यान से बनाने पड़ते हैं। रंग भरने के लिये तीली में रूई लपेट कर अथवा ब्रश का प्रयोग किया जाता है। इस कार्य को आरम्भ करने के बाद बिना पूरा किये नहीं उठा जा सकता है, ऐसी मान्यता है।

**मुख्य बर-बूंद निम्नलिखित है:** मोरटी वर (१० बूंद), गौरी तिलक (३५), कटारी वर (७ बिन्दु में), गलीची बर (१२), सिगलिया बर (२२ बूंद), २४ बूंदों का भद्र, १६ का भद्र, ३३ का भद्र, ३५ का भद्र आदि।

**जन्म-कुण्डली** – जन्म-कुण्डली एक व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन का लेखा जोखा है। इसमें ज्योतिषी गणित के आधार पर जीवन की विविध घटनाओं का विवरण दिया रहता है। यह कागज पर बनाई जाती है। इसे ज्योतिषी बड़े मनोयोग तथा परिश्रम से तैयार करते हैं और अपनी कलात्मक दक्षता का भी परिचय देते हैं।

जन्म कुण्डली में निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं :

१. सजावट के लिये प्रयुक्त विविध परम्परागत मोतिफों का प्रयोग।
२. देवी देवताओं के मिनीएचर/लघुचित्र।
३. ज्योतिष सम्बन्धी विविध चक्र।
४. लिखने की कला (Caligraphy)।
५. विविध रंगों का कलात्मक प्रयोग।

## सांझी

### एक लोक उत्सव – एक गीत पर्व

डा० विमला वर्मा

सांझी, ब्रज की कुमारियों का एक लोकप्रिय पर्व है। सोलह दिन तक बनने वाले भित्ति चित्र सांझी और कुमारियों के कोमल कंठों से फूटतेसारगर्भित भावपूर्ण गीतों का समागम पूरे ब्रज प्रदेश के गांवों-कस्बों और शहरोंकी गलियों को न केवल रंगीन बना देता है वरन् देशी व विदेशी पर्यटकों को भारी संख्या में अपनी ओर आकर्षित भी करता है।

सांझी शब्द का जन्म संस्कृत के तत्सम शब्द सन्ध्या के तद्भव रूप से हुआ है। सांझी की रचना भले ही दिन भर चलती हो पर उसकी आरती सन्ध्या को ही होती है। ब्रज प्रदेश में सांझी के तीन रूप मिलते हैं।

- गोबर, कौड़ी, मिट्टी, रंगबिरंगे कागज, फूल आदि से बनी व सजी हुई सांझी चित्रण।
- मिट्टी के चबूतरे पर कागज के स्टेंसिलों की सहायता से सूखे रंगों से बनाई गई सांझी, जो कि देव स्थानों और मंदिरों में बनाई जाती हैं।
- पानी के भीतर और पानी के ऊपर बनाई गई सांझी।

ब्रज प्रदेश की तरह ही यह उत्सव राजस्थान में "संझ्या", महाराष्ट्र में "गुलाबाई", हरियाणा व पंजाब में "सांझी" व सांझी धूंघा", मिथिला में "सांझी", तथा मध्य प्रदेश में "संजा" के नाम से मनाया जाता है। उपरोक्त सभी पर्वों में कुंवारी कन्याओं की आस्था और आकांक्षाएं लोक चित्रकारी के माध्यम से अभिव्यक्त होती हैं। न केवल भित्ति आकृतियां वरन् उन में प्रयुक्त होने वाली सामग्रियों और इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में भी काफी साम्य दिखाई देता है। यों तो इस उत्सव से सम्बंधित मिलने वाली लोक कथाओं में अन्तर है पर आज के युग में बालिकायें आदि शक्ति के विभिन्न रूपों यथा पार्वती, गौरा, भवानी और दुर्गा आदि की आराधना के निमित्त विभिन्न लोकांचलों में इस उत्सव को मनाती हैं।

ब्रज में प्रचलित लोक कथा के अनुसार एक बहुत ही प्यारी, सुन्दर और सभी की दुलारी लड़की की याद में यह उत्सव आश्विन के श्राद्ध पक्ष में १५ दिन तक मनाया जाता है। इस लड़की की असमय ही ससुराल में कष्टों को झेलते हुए १६ वर्ष की अवस्था में मृत्यु हो गई थी। उसकी पुण्य-स्मृति को चिरस्थाई बनाने के लिए सोलह श्राद्ध के दिनों में सांझी पर्व का सिलसिला आरम्भ हो गया। श्राद्ध पक्ष में भी लोग अपने दिवंगत प्रियजनों को याद करते हैं, इसलिए इस तरह सामूहिक श्राद्ध के केन्द्र संज्ञया को भी लोक जीवन इस आस्था-अनुष्ठान के माध्यम से प्रतिवर्ष याद किया करता है। इस उत्सव को केवल कुंवारी और १६ वर्ष तक की अनब्याही किशोरियां ही मनाती हैं। मुंह अंधेरे ही किशोरियां अपने आंचल या छोटी छोटी बेंत की डालियों में हरसिंगार, मोंगरे, गुलतेवड़ी, चमेली, गुलाब तथा केवड़े के फूलों को बटोरती हैं और फूलों को बीनने के बाद घर के भीतर या बाहर के एक भाग को गोबर से लीपती हैं। सूर्य, चन्द्र, तारे बना कर एक लड़की की आकृति गाय के गोबर से बनाती हैं और उसे फूलों से शाम तक



सांझी का चित्र

सजा देती हैं। शाम को बच्चों की टोलियां हंसती, गाती, हाथों में आरती का थाल लिए एक घर से दूसरे घर को जाती तथा सांझी देवी की आरती उतारते दिखाई देती हैं। शाम के धुंधलके में झनकदार आवाज में सांझी की आरती के स्वर सुनाई पड़ते हैं जिसके बोल प्रश्नोत्तर रूप में होते हैं :-

आरता रे आरता, सांझी माई आरता ।

प्रश्न - काहें का दिवला, काहे की बाती  
काहे का तेल जले सारी राती,  
जले सारी राती ।

उत्तर - माटी का दिवला, निर्मला बाती  
सरसों का तेल जले दिन राती-  
आरता रे आरता

प्रश्न - सांझी का ओढ़ेगी, का पहनेगी,  
काहे का शीष गुंथाये जी,  
आरता रे आरता

उत्तर - सालू ओढ़ूंगी, लहंगा पहनूंगी  
मोतियन मांग भराऊंगी ।  
आरता रे आरता

आरती के बोल लम्बे भी होते हैं और छोटे भी, पर आरती के अंत में वे सांझी माई से भाई के लिए भतीजे, अपने लिए कामदेव के समान वर और सदा सुहागिन रहने के लिए वरदान मांगती हैं। सांझी को बनाने के लिए गाय के गोबर को स्थान स्थान से उठाते समय भी वह गुनगुनाना नहीं भूलती :-

सांझी तो मांगें हरा हरा गोबर,  
कहां से लाऊं सांझी हरा हरा गोबर ।

मेरा तो बीरन अहीरिन को बैठा,  
ले सांझी मेरी तू हरा हरा गोबर ।

इसी तरह सांझी को सजाते समय भी गीत चलते ही रहे हैं :-

सांझी तो मांगे साड़ी जम्फर  
कहां से लाऊं साड़ी जम्फर  
मेरा तो बीरन बजाजिन को बैठा  
ले मेरी सांझी तू साड़ी और जम्फर ।  
सांझी तो मांगे टीका और बिछुवा  
कहां से लाऊं टीका और बिछुवा  
मेरा तो बीरन सुनारिन को बैठा  
ले मेरी सांझी तू टीका और बिछुवा

इसी तरह श्रृंगार की प्रत्येक वस्तु, मेवा-मिश्री मिठाई, पान के बीड़े आदि गीतों के माध्यम से सांझी मांगती रहती है। क्वारी लड़कियों के पास यह सब कहां से आये तो उसका समाधान बालबुद्धि ने प्रत्येक बार अपने प्यारे भाई (बीरन) की जगह जगह शादी कराके की है।

इस समय गाये जाने वाले गीतों की रचना किसी कवि या गीतकार ने नहीं की है। ये गीत इन्हीं कुमारियों के मन की इच्छायें हैं जिनको बालसुलभ तुकबंदियों के रूप में उन्हीं के द्वारा रचा जाता है।

यों तो कन्याओं को अपना बीर पान्द होता है। और वह ही इस उत्सव को उल्लासपूर्वक मनाने में अधिकतम योगदान देता है। पर जब उसकी शादी हो जाती है तब वह शायद इतना सहयोग बहन को नहीं दे पाता जितना अविवाहित रहने पर दे पाता है। इसीलिए एक गाया जाने वाला गीत, मां-बेटी के प्रश्नोत्तर पर बना है जो नारी हृदय की स्वभावगत ईर्ष्या, व्यंग्य, हंसी-मजाक को सुन्दरता से दर्शाता है :-



सांझी का चित्र

प्रश्न - मां, भइया कहां ब्याहो परवरिया ।  
अलवर ब्याहो, पलवल ब्याहों या,  
नन्द गांव को ब्याहों परवरिया ।

उत्तर - ना अलवर ब्याहों ना पलवल ब्याहों,  
वह ब्याहों नन्द गांव - परवरिया ।

प्रश्न - मां, भाभी कैसी आई - परवरिया ।

उत्तर - वह तो आंख से अच्छी, नाक से अच्छी,  
पर जीभ से लुच्छी आई - परवरिया

प्रश्न – मां भाभी कितनों खाबे, परवरिया

उत्तर – वह तो तह का तह उड़ावें – परवरिया

प्रश्न – मां भाभी कितनो लाई, परवरिया

उत्तर – वह तो आठ बिल्लैया, नौ सौ बन्दर

सोलह चूहे लाई – परवरिया

सांझी एक ऐसा लोक उत्सव है जिस में परिवार के बहुत से लोग सम्मिलित होते हैं। इस उत्सव में मामा का योगदान भी होता है। जिस तरह ब्याही लड़की को परिवार के प्रत्येक सदस्य द्वारा घर में न्यौता मिलता है उसी प्रकार सांझी को मामा के यहां भी न्यौता मिलता है। कन्यायें हंसी-मजाक के साथ गाती हैं :-

मेरी सांझी, ऐलो मामा के घर न्योती।  
मामा मेरा छैल छबीलो, मामी बड़ी सजीली  
ओ मामा देगा दूध कटोरा, मामी देगी साड़ी,  
और कब पियेगी दूध कटोरा, कब पहरेंगी साड़ी  
ओ लुढ़क जायेगा तेरा दूध कटोरा, धरी रहेगी साड़ी।

इसी तरह बाल सुलभ अनेकों गीतों की रचना कुमारियां करती रहती हैं। इनका आधार सामाजिक रीति रिवाज व व्यवहार होता है।

सांझी चित्रण का आरम्भ भाद्रपक्ष की पूर्णिमा से आरम्भ होता है। उस दिन एक लड़की (जिसको बीजन बेटी कहते हैं) चांद व सूरज की रचना करती है। सन्ध्या समय उसकी आरती उतारी जाती है। श्राद्ध पक्ष के प्रथम दिन भी बीजन बेटी का चित्रण होता है। इसके बाद दूसरे दिन दो खाने (कमरे) वाला कोट, तीज को तीन खाने वाला कोट, चौथ को चौपड़, पंचमी को पांच पान, छठ को छबरिया, सप्तमी को स्वस्तिक, अष्टमी को आठकली वाला फूल, नवमी को नौका भ्रमण, दसवीं को दस सुपारी, ग्यारस को ग्यारह नारियल, द्वादश को बारह दौने, तेरस में डोली के भीतर सांझी देवी, चौदस को एक लंगड़ा ब्राह्मण तथा एक काला कौआ तथा अमावस को एक कोट बनाया जाता है और इसमें उन सभी चीजों का चित्रण किया जाता है जिसका अंकन पिछले १५ दिनों में किया गया है। हर दिन का चित्रण संध्या को आरती उतारने के बाद दूसरे दिन सुबह दीवाल से हटा कर एक स्थान पर जमा कर दिया जाता है विधिवत् गोबर से लीपने के बाद उस दिन का चित्रण होता है यही नियम अमावस तक चलता रहता है।



कदम के पत्ते में कृष्ण सांझी मथुरा

अमावस का संझ्या कोट को बनाने में परिवार के अन्य सदस्य भी साथ देते हैं क्योंकि वह बड़ा होता है और उसको सुन्दर बनाने में बालिकाओं में होड़ लगी रहती है। गोबर से इस कोटा का निर्माण करने के बाद बहुरंगी कागज, पन्नी, मोती, सीप, कौड़ी, हल्दी और कुमकुम, शीशे के टुकड़े, गिलट या मिट्टी के गहने, सुनहरी और रूपहेली पन्नी आदि का प्रयोग होता है पर कहीं कहीं बालिकायें केवल रंग बिरंगे फूलों या फिर कौड़ी से ही सजाती हैं। इस दिन के चित्रण में अन्य दिनों के सभी अभिकल्पों के साथ साथ भाई, बहन, एक काला कौआ तथा एक लंगड़ा ब्राह्मण भी बनाया जाता है। प्रतिदिन बनाने वाली सांझी की वस्तुओं में जाति के आधार पर अंतर आ जाता है। लगभग ६० प्रकार के अभिकल्पों का चित्रण किया जाता है जो ना केवल जातिगत वरन् भाषागत विभिन्नता को दर्शाता है।

यों तो वह क्वारी लड़कियों का त्योहार है। जो लड़कियां इसे शादी से पहले मनाती हैं वे शादी के प्रथम वर्ष में सोलह कोटों की पूजा करके इस त्योहार की समाप्ति करती हैं। बाद में भी लड़की के ससुराल को सोलह कटोरियों में पेड़े भर कर भेजे जाते हैं।

अमावस्या के बाद किसी भी शुभ दिन अथवा दशहरा, शरद पूर्णिमा के दिन सूखी संझ्या को एकत्र करके नदी, तालाब या बावड़ी में विसर्जित कर दिया जाता है।

पारंपरिक माटी-कलाओं में ब्रज की सांझी कला अप्रतिम है। यह भित्ति-अलंकरण-कला (म्यूरल) की अनूठी बानगी है। अबोध मानवी-स्पर्श पाकर विकसित मूर्तकला की यह जीवन-परंपरा सदियों से अपनी अलग पहचान बनाये हुए हैं।

सांझी कला के दो अन्य रूप देवालियों के आश्रय में पनपे हैं। लोक वार्ता के अनुसार राधा, कृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा में मार्ग को सुन्दर अभिकल्पों से सजा देती थी। कृष्ण के प्रेम में भीगी राधा प्रतीक्षा की घड़ियों को इसी तरह प्रतिदिन बिताती थी पर कब और कैसे फूलों का स्थान सूखे रंगों ने ले लिया यह कोई नहीं जानता।

आज इस सुन्दर कला को बनाने वाले कुछ ही लोग शेष रह गये हैं। इसकी छटा बल्लभ संप्रदाय के मंदिरों में या विशेष उत्सवों में आज भी मथुरा व वृदावन के देवालियों में मिलती है। पहले कलाकार कागज पर गोचरण लीला, दान लीला, गोवर्धन लीला, कालिया दमन, रासलीला आदि लोकप्रिय लीलाओं से किसी एक का स्टेंसिल तैयार करता है। एक ही लीला के लिए रंगों के प्रयोग के आधार पर करीब आठ या दस तक स्टेंसिल तैयार करते हैं। जिसमें जहां रंग भरना हो वही स्थान कटा हुआ होता है और इतनी बारीकी व सफाई से स्टेंसिल बनाया जाता है कि एक स्टेंसिल दूसरे पर एक दम फिट हो जाता है।

इसके बाद पहले मिट्टी की वेदी तैयार की जाती है और वेदी की ऊपरी सतह को खूब अच्छी तरह चिकना कर लिया जाता है। वेदी में जब हल्की सी नमी रह जाती है तभी सिल खड़ी के सूखे रंगों और कटे हुए स्टेंसिल की सहायता से चित्रकारी आरम्भ की जाती है। कलाकार अपनी कल्पना व रचनात्मक शक्ति के आधार पर कुछ ही घंटे में सम्पूर्ण वेदी को चित्रमय बना देता है।

सांझी का तीसरा रूप जल सांझी है। इसमें कलाकार की कल्पना और दक्षता देखते ही बनती है। कलाकार पहले किसी थाली को भीतर से चिकना कर लेता है। तत्पश्चात् स्टेंसिल और सूखे रंगों की सहायता से किसी भी लीला को चित्रित करता है। रंग जब चिकनाई में कुछ समय पश्चात् अच्छी तरह चिपक जाते हैं तब थाली को धीरे-धीरे पानी से भर देते हैं इसलिए सुन्दर आकर्षक सांझी पानी के नीचे से झांकती दृष्टिगोचर होती है। कभी कभी तो ये कलाकार बहुत कुशलता से थाली के एक भाग में सूखी सांझी व एक भाग में जल सांझी को भी चित्रित करते हैं।

आजकल सांझी कला के इस रूप का प्रचलन बहुत ही कम हो गया है और उसका स्थान केले के पत्तों की सांझी ने ले लिया है। सांझी चाहे सूखे रंगों से वेदिकाओं पर बनाई जाए या थाल में जल सांझी के रूप में या फिर कुमारियों द्वारा गोबर, मिट्टी, कौड़ी, फूल आदि अनेकों वस्तुओं से, दिन पर दिन लुप्त होती कला की श्रेणी में आ गई है।



सांझी लोक चित्रण

## लोक चित्रण और उत्सव

डा० बिमला वर्मा

ए ६८/२, डीडीए पलैट्स

द्वितीय एस.एफ.एस. साकेत, नयी दिल्ली-१७

भारत वर्ष में भूमि एवं भिति को अलंकृत करने की प्रथा प्राचीनकाल से ही लोकप्रिय रही है। इसका उद्भव कब हुआ यह तो ठीक ठीक बता पाना सम्भव नहीं परन्तु प्रागैतिहासिक काल के अवलोकन से यह विदित होता है कि मानव में इस प्रवृत्ति का उद्भव और विकास स्वयं मानव सभ्यता के उद्भव और विकास के साथ साथ हुआ है।

उत्तर प्रदेश में आर्यों के आगमन से पूर्व की कला के विषय में प्रागैतिहासिक काल की कला को छोड़कर अधिक जानकारी प्राप्त नहीं है। परन्तु आर्यों के आगमन के पश्चात की कला की कुछ कलाकृतियाँ आज भी जनजीवन में लोकप्रिय हैं। यज्ञ-वेदिकाओं को सजाने हेतु बिन्दु, रेखाओं, त्रिकोणों, वर्ग, आयत आदि आकारों से निर्मित अभिकल्प आज भी दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी आदि के पूजन के समय बनाये जाते हैं। जिनमें अनाज, हल्दी, कुमकुम-फूल आदि का प्रयोग किया जाता है।

समय बीतता गया और वैदिक धर्म का प्रभाव जनता पर शनैः शनैः कम होता गया। कुछ समय बाद वैदिक धर्म के स्थान पर हिन्दुधर्म का उदय हुआ। समाज के बहुत बड़े हिस्से ने इस धर्म को अपनाया और परवान चढ़ाया। इस धर्म के अंतर्गत प्राकृतिक शक्तियों के साथ विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा अर्चना शुरू हुई तथा उनका प्रतीकात्मक रूप में लोक कलाकारों ने चित्रण किया। लोक कलाकारों ने दैनिक जीवन में उपयोग और आनन्द प्रदान करने वाले पशु-पक्षियों, फल-फूल और वृक्षों का भी चित्रण किया। जो वस्तु जितनी उपयोगी थी उतनी ही अधिक बार उनका चित्रण हुआ।

प्रतीकीकरण मानव का स्वभाव है। प्रतीकों का निर्माण केवल संसार में देखे गये रूपों के आधार पर ही नहीं होता वरन् उनकी सृष्टि अनेक वैदिक आस्थाओं के संयोग से भी होती है। ये प्रतीक ऐसी सूक्ष्म आकृतियाँ भी प्रस्तुत करते हैं, जिनका सादृश्य कहीं नहीं मिलता। प्रायः सभी प्रतीकों के एक गूढ़ अर्थ होते हैं

जैसे :-

⊙ **बिन्दु** :- यह पूर्ण, अनन्त ब्रह्मांड तथा आकाश का प्रतीक है। इसको सृष्टि का केन्द्र बिन्दु भी माना गया है।

□ **चतुष्कोण** :- यह स्थिरता पूर्णता व स्थूलता का प्रतीक है इसको चार देवता, चार आश्रम तथा पृथ्वी और आकाश का भी प्रतीक माना गया है।

□ **शकरपारा** :- यह क्रिया शील भूत का द्योतक माना गया है।

△ **त्रिभुज** △ **ऊर्ध्वमुखी** ▽ **अधोमुखी**

तीन भुजाओं के मिलने से त्रिभुज का निर्माण होता है। जब तीनों भुजाओं का संकुचन होने लगता है तब यह अन्त में बिन्दु का रूप ले लेता है। ऊर्ध्वमुखी त्रिकोण शिव, पुरुष, अग्नि, पर्वत और अधोमुखी शक्ति, स्त्री, जल आदि का प्रतीक माना गया है। यह तीन बचन, तीन गुण, (रज, तम, सत), तीन महाशक्तियाँ, तीन काल तथा तीन अवस्थाओं का भी प्रतीक माना गया है।

षट्कोण ☆

तंत्र में षट्कोण प्रकृति और पुरुष का सम्मिलित रूप दर्शाता है। इन्हीं दो तत्वों के चारों ओर समस्त विश्व, समस्त अलौकिक विद्या और सम्पूर्ण दर्शन शास्त्र कार्यरत है। प्रकृति और पुरुष की सम्मिलित क्रियाशीलता ही विश्व के सृजन और विकास की द्योतक है। शुभ फलदायक है।

कृत ○

यह अनन्त ब्रह्मांड व सम्पूर्णता का प्रतीक है। इसको वायु, आकाश एवं नाद का प्रतीक भी माना गया है।

चक्र ⦿

यह समय, गति, नियम, जन्म-मृत्यु और उत्थान व पतन का

प्रतीक है। यह बौद्ध धर्म के अनुसार धर्मचक्र और वैष्णव सम्प्रदाय के लिए विष्णु का सुदर्शन चक्र के समान है।

### स्वास्तिक

卐 स्वास्तिक सूर्य का प्रतीक है। इस की चार भुजाएं चार वेद, चार आश्रम, चार वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) चार देव (चार दिशाएँ तथा अग्नि, इन्द्र, वरुण, सोम) के भी प्रतीक है। स्वास्तिक का चित्रण केवल उत्तर प्रदेश की प्रत्येक भूमि और भूमि अलंकरण में ही नहीं होता है वरन् सम्पूर्ण भारतीय लोक चित्रण में भी होता है।



शुभ चिन्ह

ॐ

यह आकार ईश्वर का प्रतीक है। इसका चित्रण किसी भी शुभ अवसर पर होता है।

— आड़ी रेखा निष्क्रियता व स्थिरता का प्रतीक होती है।

| सीधी खड़ी रेखा गति, सक्रियता और आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है।

/ तिरछी रेखा गति दर्शाती है।

X एक दूसरे को काटती हुई रेखाएँ युद्ध की प्रतीक हैं।

🌱 दोनों ओर बढ़ती हुई रेखाएँ विकास की प्रतीक हैं।

〰 जल

〰 अग्नि

〰 वायु

〰 पृथ्वी

### कमल

कमल को प्राणशक्ति तथा विराट मन का प्रतीक माना गया है इसीलिए पाँच दल से लेकर सहस्र दल के विभिन्न आकारों में कमल बनाये जाते हैं। कमल का चित्रण हिन्दु, बौद्ध व जैन सभी धर्मों के अंतर्गत हुआ है। इसी तरह लोक कला में चित्रित अशोक का वृक्ष चिरयौवन, पीपल दाम्पत्य प्रेम को बढ़ाने वाला, संतान देने वाला तथा प्रेतवाधा से मुक्ति दिलाने वाला, वट वृक्ष आयु तथा विशालता, नीम वायु की शुद्धि, आँवला सुख सौभाग्य व संतान देने वाला, केला सन्तान कामना, आम की बौर को इच्छापूर्ति, तुलसी के पौधे को उस के औषधिय गुणों के कारण, बांस के वृक्ष को वंशवृद्धि, कल्पवृक्ष को इच्छाओं की पूर्ति करने वाला और विभिन्न प्रकार की फूल पत्तियों को आनन्द व उल्लास का प्रतीक माना गया है।

लोकचित्रण में उन सभी उपयोगी पशु-पक्षी तथा खतरनाक जीव जन्तुओं का भी चित्रण होता है जिनका दैनिक जीवन में समय समय पर सामना करना पड़ता है। गाय व उसके परिवार की सबसे अधिक पूजा अर्चना होती है क्योंकि मानव की जितनी अधिक सेवा वह और उसका परिवार करता है उतना कोई अन्य पशु-पक्षी नहीं। इसके साथ ही हाथी ऐश्वर्य, शक्ति, विद्वता, दृढ़ता व मस्ती भरी चाल, बृषभ शिव का वाहन और कृषकों का मित्र, अश्व शक्तिशाली पुरुष, उद्दाम वासना, गति, बल, राज्य शक्ति, इन्द्रियों का प्रतीक, सर्प मानवीय इच्छाओं, जल, तम, अनन्त, संसारिक मोह और गुप्त वैभव, गरुड़ पक्षी सूर्य और आध्यात्मिकता, शुक श्रंगार व प्रेम, मयूर प्रेम और सौन्दर्य, हंस ज्ञान, संदेशवाहक, निर्मलता, आत्मा, कपोत शान्ति और संदेश वाहक, कौवा शकुन विचार, मीन सुख-सौभाग्य, सुखी दामपत्य जीवन के प्रतीक के रूप में विभिन्न भूमि और भित्ति अलंकरण में चित्रित किये जाते हैं।

विष्णु, महेश तथा अनगिनत देवी देवताओं, मातृकायें, सूर्य चन्द्र, नवग्रह, गंगा-यमुना आदि का भी चित्रण लोक कला के अंतर्गत किया जाता है। कभी कभी विभिन्न देवताओं व देवियों के आयुध व वाहनों को प्रतीकात्मक रूप में चित्रण करने की प्रथा है।

भारत के सभी त्यौहार या तो ऋतुपरिवर्तन के पर्व हैं या फिर देवी देवताओं के जन्म दिन, विजय पर्व या केवल आराधना के लिए जिसका उद्देश्य पुत्र प्राप्ति, पति के दीर्घायु जीवन से सम्बन्धित हैं इसीलिए विभिन्न त्यौहारों पर किए गए चित्रण एक

दूसरे से अलग होते हैं। उदाहरण के तौर पर नागपंचमी पर नागों का चित्रण, रक्षाबन्धन पर राखी, सोन, श्रवण कुमार चित्रण, करवाचौथ, अहोई अष्टमी, दुबली सातें और हरछठ पर लोक कथाओं पर आधारित चित्रण, दीपावली पर गणेश-लक्ष्मी तथा अन्य वस्तुएं देवउठान पर देवी-देवता, बच्चों के खिलौने आदि। सूर्य-चन्द्र, तुलसी का बिरवा, स्वास्तिक और मंगल घट का चित्रण अधिकतर सभी भूमि व भित्ति अलंकरणों में होता है।



कोहबर

चौक चित्रण उत्तर प्रदेश में प्रायः हर त्यौहार व संस्कार के समय होता है स्वास्तिक, बिन्दु, आड़ी और खड़ी रेखाओं से बनाया गया यह चौक अपने में एक गूढ़ अर्थ समेटे हुआ है।

स्वास्तिक को घेरता हुआ चतुष्कोण भूपुर अथवा पृथ्वी को दर्शाता है। चतुष्कोण की चारों भुजाएँ चार आश्रमों की प्रतीक हैं तथा प्रत्येक भुजा की चार रेखाएँ चार वर्ग (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) की प्रतीक हैं।

(७०) चारों भुजाओं के मिलन के स्थान पर चार घड़े के आकार के चित्रण बने हैं, जो कि पूर्ण कुम्भ के प्रतीक हैं। यह सुख-सम्पत्ति और जीवन की पूर्णता के परिचायक हैं। घड़े में भरा जल जीवन या प्राण रस है। मानव और विराट विश्व को पूर्ण कुम्भ माना गया है।

चारों भुजाओं के अंत में पूर्ण कुम्भों के मध्य चार त्रिकोण बने हुए हैं जो स्त्री और पुरुष या शिव और शक्ति का प्रतीक है। तंत्र के अनुसार दोनों का मिलन ही सृष्टि को जन्म देता है। चारों ओर के बिन्दु सृष्टि के परिचायक हैं। त्रिकोण के शीर्ष पर बनी हुई रेखा त्रिशूल का प्रतीक है जो कि सत्व, रजस व तमस गुणों को व्यक्त करता है। पूर्ण कुम्भ के ऊपर की बनी दो आड़ी रेखाएँ स्थिरता, निष्क्रियता, व मृत्यु व एक खड़ी रेखा विकास का प्रतीक है।

यह चौक सदैव ही शुभ अवसरों पर याद दिलाता है कि प्राणीमात्र को जीवनदाता सूर्य के संरक्षण में पृथ्वी पर रहते हुए, ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करने के पश्चात स्त्री-पुरुष के रूप में मिलकर, ग्रहस्थ आश्रम में प्रवेश कर, धर्मानुसार अर्थापार्जन कर, काम के रूप में सुयोग्य नागरिकों को जन्म देना चाहिए और सृष्टि करनी चाहिए।

जिस तरह यह चौक अपने में एक अलग और गूढ़ अर्थ समेटे हैं उसी प्रकार अन्य चित्रण भी।



लोक चित्र



## अल्पना

श्रीमती प्रभा पवार

लखनऊ

### अल्पना के सम्बन्ध में पुराणों में क्या कथायें हैं

#### उनका संक्षिप्त विवरण :

चित्रकला पर पहले भारतीय लेख 'चित्र लक्षण' में एक कथा का उल्लेख आता है। वह कथा इस प्रकार है 'एक राजा के पुरोहित का बेटा मर गया ब्रह्मा ने राजा से कहा वह लड़के का रेखाचित्र जमीन पर बना दें ताकि उसमें जान डाली जा सके। राजा ने जमीन पर कुछ रेखायें खींची, यहीं से अल्पना की शुरुआत हुई।

इसी सन्दर्भ में एक और कथा है कि ब्रह्मा ने सृजन के उन्माद में आम के पेड़ का रस निकाल कर उसी से जमीन पर एक स्त्री की आकृति बनाई। उस स्त्री का सौन्दर्य अप्सराओं को मात देने वाला था, बाद में वही स्त्री उर्वशी कहलाई ब्रह्मा द्वारा खींची गई यही आकृति अल्पना का प्रथम रूप है। अल्पना के सम्बन्ध में और भी पौराणिक सन्दर्भ मिलते हैं जैसे - रामायण में सीता के विवाह मण्डप की चर्चा जहां की गई है वहां भी अल्पना का जिक्र है दक्षिण में "चोला" शासकों के युग में अल्पना का विकास काफी हुआ।

मोहन जोदड़ों और हड़प्पा में भी मांडी हुई अल्पना के चिह्न मिलते हैं। अल्पना वात्स्यायन के 'काम-सूत्र' में वर्णित ६४ कलाओं में से एक है। यह एक अति प्राचीन लोक कला है। इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में साधारणतया यह जाना जाता है कि यह संस्कृत के 'ओलम्पेन' शब्द से निकला है, ओलम्पेन का मतलब है लेप करना। इस कला का प्रचलन इसलिये हुआ कि लोगों का विश्वास है कि ये कलात्मक चित्र शहर व गांवों में धन-धान्य से परिपूर्ण रखने में अपने जादुई प्रभाव से सुरक्षित रखते हैं।

बहुत लोगों का कहना है कि बहुत से व्रत या पूजा जिनमें कि अल्पना दी जाती है आयों के युग से पूर्व की है। आनन्द कुमार स्वामी जो कि भारतीय कला के पण्डित कहलाते हैं - उनका मत है कि लोक कला जो बंगाल में बची हुई है उसका सम्बन्ध ५००० वर्ष पूर्व की मोहन जोदड़ों की कला से है। गुरुसहाय

दत्त जो व्रतचारी आन्दोलन के जन्मदाता तथा बंगला लोक कला व संस्कृति के विद्वान हैं उनके मत के अनुसार भी वह कमल का फूल जो बंगाली स्त्रियां अपनी अल्पनाओं के मध्य में बनाती हैं वह भी मोहन जोदड़ों के समय के कमल के फूल का ही प्रतिरूप है। अन्य कुछ समीक्षकों का भी यही कहना है कि इसके बहुत से आलेखन तथा प्रतीक अति प्राचीन समय से वैसे के वैसे ही परम्परागत चले आ रहे हैं।

कुछ अन्य विद्वानों का मत है कि अल्पना हमारी संस्कृति में आदिवासी व्यक्तियों जैसे - मुंडा लोगों से आई है जो कि इस देश में आयों के आने से अनेक वर्षों पूर्व रह रहे थे। उनके कथन के अनुसार वास्तव में यह प्राचीन व परम्परागत बंगला की लोक कला कृषि युग से चली आ रही है। उस समय के लोगों ने कुछ देवी देवताओं व कुछ जादुई प्रभावों पर विश्वास कर रक्खा था जिसके अभ्यास से अच्छी फसल होती थी तथा प्रेतात्मायें भाग जाती थीं।

बाद के युग में कुछ बंगाली पुस्तकों में अल्पना के सम्बन्ध में वर्णन पाया जाता है जैसे - बांग्लार व्रत एवं काजल रेखा। किसी भी गाँव व प्रदेश के बारे में जानने के लिये यह अति आवश्यक है कि हम उस प्रदेश की अल्पना व व्रतों के बारे में कुछ जाने वास्तव में परम्परागत कला नृत्य, गान तथा साहित्य का अध्ययन करके ही हम वहां के निवासियों के आन्तरिक जीवन के बारे में समझ सकेंगे।

ऐसा न समझना चाहिये कि अल्पना कला केवल बंगाल में ही प्रचलित है या थी। इसका अलग अलग नामों से भिन्न-भिन्न रूपों में भारत के अन्य भागों में भी प्रचलन है गुजरात में इसे सतिया, महाराष्ट्र में रंगोली, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश में चौक पूरना व सांझी पहाड़ों में चौक पूरण व कहीं कहीं 'ऐपण' राजस्थान में मंडन, मालवा में मांडने, विहार में अरिचन, मधुबनी, कहबर, आन्ध्र प्रदेश में युग्गुलु, दक्षिण भारत में कोलम कहते हैं।

### उत्तर प्रदेश की प्रमुख लोक कलाओं के नाम :

अल्मोड़ा का वरबूद, घुलिअप्पा, पिथौरागढ़ का ज्योति, लखीमपुर खीरी का मऊहर और हरछट, मथुरा का अमला, बरेली का करवा चौथ, पीलीभीत की जन्माष्टमी, बलिया का कोहबर, झांसी का टेसू, महालक्ष्मी, भैयादूज देवठानी आदि। तात्पर्य यह है कि भारत के प्रायः समस्त प्रदेशों में इस कला का नाना रूपों में प्रचलन है, बिहार में मधुबनी गांव की इस कला का विशेष रूप से नाम हुआ है, उसे मधुबनी ही कहने लगे। अध्ययन करने से यह पता चलता है कि देश के समस्त प्रान्तों की अल्पना कला में कुछ बातों में भिन्नता होते हुए भी कई बातों में समानता भी है - वह इस प्रकार है :-

१. साधारणतया इसका स्त्री समाज से अधिक सम्बन्ध है और स्त्रियां ही इसे बनाती हैं। बड़े उत्सवों में स्त्रियों के समूह के समूह इस कार्य को करते हैं। कहते हैं जो आकार इसमें उभरते हैं उनके पीछे बनाने वालों का प्रेम, लगन, और उनकी भक्ति होती है। इसमें अंकित अपने भावों की अभिव्यक्ति वे गीतों की पंक्तियों में भी करती हैं। इस सजावट से बनाने वालों की आन्तरिक शुद्धता का पता चलता है, कन्यायें प्रारम्भ से ही पूजा करते समय यह कामना करती हैं कि हमें ऐसा पति व घर मिले जो धन धान्य से पूर्ण हो इसलिये अल्पना में, समस्त श्रृंगार व गृहस्थी की चीजें जैसे धान, मछली कंधी इत्यादि बना कर पूजा की जाती है। जब नई बहू घर में प्रवेश करती है तो कई जगह उसे दरवाजों पर रुक कर अल्पना बनानी पड़ती है। इस अल्पना में संयोजन को देखकर बनाने वाले के व्यक्तित्व का बोध होता है। कई परिवारों में बहू को लक्ष्मी का रूप मानते हैं उसके स्वागत में अल्पना में

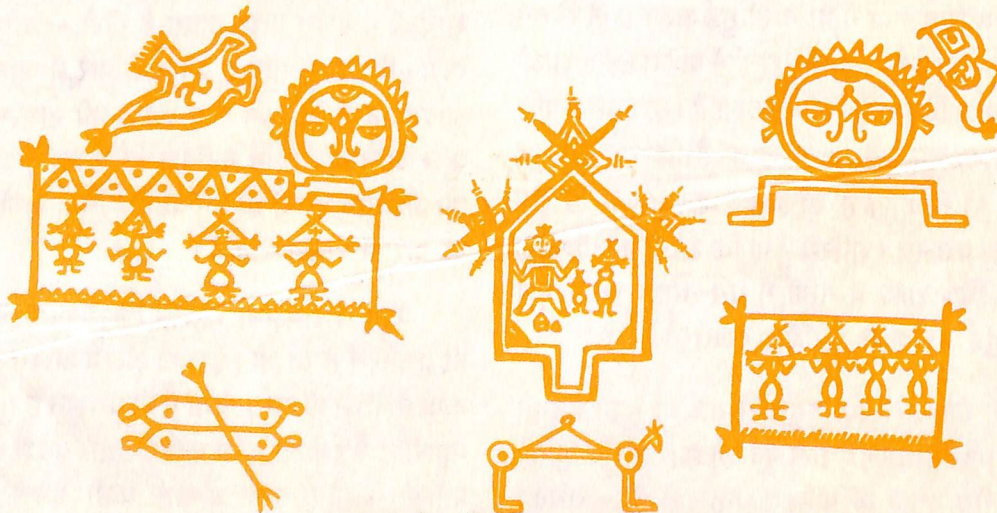
कमल बनाये जाते हैं जिन पर उसे चलने को कहा जाता है।

२. अल्पना बहुत तन्मयता व श्रद्धा से की जाती है यह जानते हुए भी कि यह कल धूल जायेगी, लेकिन जिस प्रयोजन से की जाती है वह हो जाने की कामना ही सबसे बड़ी है। यह सामाजिक उत्सवों, श्रद्धा-स्मृति अवसरों, त्योहारों तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों में बनाई जाती है, कुछ धार्मिक 'प्रतीक' ऐसे पाये जाते हैं जो पीढ़ियों से उसी रूप में बनाये जाते चले आ रहे हैं जिन्हें कन्यायें तथा बहुएं अपनी माताओं तथा सासों से इस कला को सीखती हैं और इस प्रकार अपने-अपने परिवार की परम्परा को कायम रखती हैं।

३. इस कला में प्रयोग में आने वाली सामग्री आसानी से व हर स्थान पर मिल जाती है। इसलिए यह कला गरीब से गरीब परिवार में भी अंकित की जाती है। जैसे - पिसा हुआ चावल का घोल, सुखाये हुए पत्तों का पाउडर से बनाया रंग, चारकोल, जलाई हुई मिट्टी, खड़िया, गेरू, रामरज आदि।

इन्हीं परम्परागत आलेखनों से प्रेरणा लेकर आचार्य रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शान्ति निकेतन के कला भवन में, अन्य चित्रकला के विषयों के साथ इस कला को भी एक अनिवार्य विषय बनाया जो आज शान्ति निकेतन की अल्पना के नाम से जानी जाती है और इस क्षेत्र में गौरी देवी भंजा का नाम चिरस्मरणीय रहेगा।

अन्त में मेरा अपना सुझाव है कि आधुनिक युग में विलुप्त होती इस कला को हमें फिर से पुर्नजीवित करना है। यह कला जहां एक तरफ सौन्दर्य वृद्धि करती है वहीं दूसरी ओर मन और आत्मा को केन्द्रित करने की असीम शक्ति है।



लोक चित्रण



सतचितआनन्द (अवध क्षेत्र)



दम्पति (इलाहाबाद क्षेत्र)

उ० प्र० सांस्कृतिक कार्य विभाग की अध्ययन वृत्ति योजना 93 - 94 के अन्तर्गत प्रकाशित एवं  
पुनार आफसेट, लखनऊ (फोन : 223757) में मुद्रित।